ओ३म्

परिवार और समाज के नवनिर्माण का साहित्यिक मासिक

शांतिधर्मी

मार्च–2020

मानव सृष्टि संवत्
1,960853121 व
विक्रमी संवत् 2077
पर
हार्दिक शुभकामनायें।

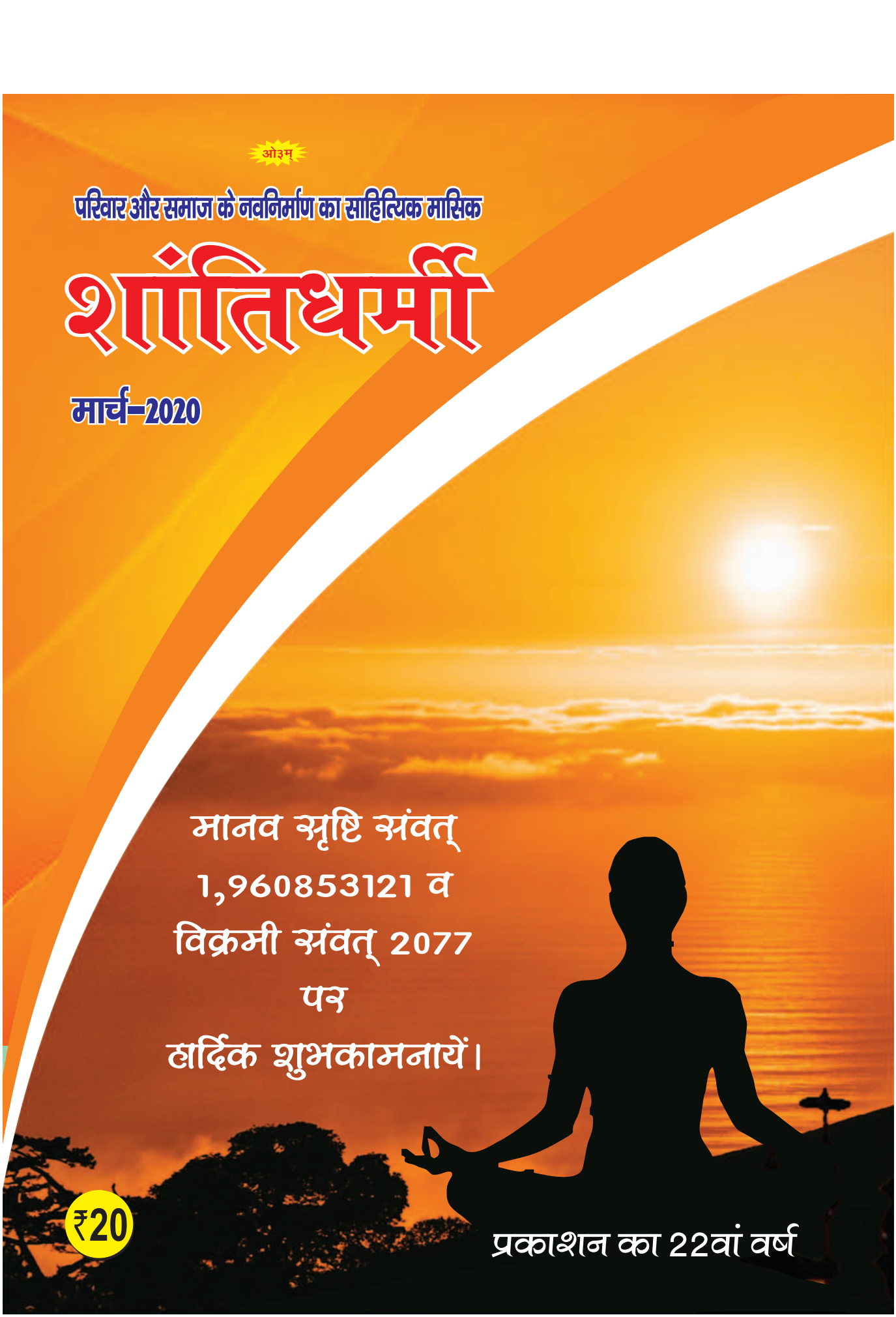

₹20

प्रकाशन का 22वां वर्ष

शांतिधर्मी वैदिक प्रचार समिति द्वारा आयोजित होली महोत्सव की झलकियाँ

संस्थापक एवं आद्य सम्पादक

पं० चन्द्रभानु आर्य

सम्पादक : **सहदेव समर्पित**
(चलभाष 09416253826)
उपसम्पादक : **सत्यसुधा शास्त्री**
प्रबंध संपादक : **सुभाष श्योराण**
आदरी सम्पादक : **यज्ञदत्त आर्य**
सह-सम्पादक : **राजेशार्य आट्टा**
डॉ० विवेक आर्य
विधि परामर्शक : **डॉ० नरेश सिहाग एडवोकेट**
सहयोग : **आचार्य आनन्द पुरुषार्थी**
श्रीपाल आर्य, बागपत
महेश सोनी, बीकानेर
भलेराम आर्य, सांघी
कर्मवीर आर्य, रेवाड़ी
कार्यालय व्यवस्थापक: **रविन्द्रकुमार आर्य**
कम्प्यूटर सज्जा : **बिशम्बर तिवारी**

सहयोग राशि

एक प्रति	:	२०.०० रु॰
वार्षिक	:	२००.०० रु॰
दस वर्ष	:	१५००.०० रु॰

ओ३म्

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा।

परिवार और समाज के नवनिर्माण का मासिक

शान्तिधर्मी

प्रकाशन का बाईसवां वर्ष
मार्च, २०२० ई०

वर्ष : २२ अंक : २ ~~फाल्गुन~~ २०७६ विक्रमी
स ष्टि संवत्-१६६०८५३१२०, दयानन्दाब्द : १६६

वेदानुशीलन (खिलाड़ी)	६
दयानन्द का आर्यसमाज (पुनर्प्रकाशन शांतिप्रवाह)	७
कुछ भारतीय अपनी जड़ों से कटे क्यों हैं	६
धर्म के मौलिक सिद्धान्तों को जीवन में उतारना आवश्यक	११
हर पुत्र श्रवणकुमार नहीं हो सकता (बेटी बचाओ)	१३
क्या होता है सनातन! (धर्म चिन्तन)	१४
यज्ञ का पर्यावरण पर प्रभाव (पर्यावरण)	१६
आज भी प्रासंगिक हैं सम्राट् ललितादित्य (इतिहास)	१८
महामृत्युंजय मंत्र में खरबूजे की उपमा का रहस्य (शास्त्र चिन्तन)	२०
वास्तविक सत्ता जीवन की है, मृत्यु अयथार्थ है। (आत्मिक उन्नति)	२३
आरोग्यप्रद आहार के स्वर्णिम सूत्र (स्वास्थ्य चर्चा)	२५
वेदज्ञ विद्वान् पं० सुधाकर चतुर्वेदी (श्रद्धांजली)	२६
महाशय स्वरूपलाल आर्य : एक प्रणम्य व्यक्तित्व (श्रद्धांजली)	३०

कविता : ८, २७

कथा : शिक्षाओं का अनर्थ-१०, सबसे शक्तिशाली मनुष्य-१३ परहेज न करने के फायदे-१७ मौत का सौदागर-१६, गड़बड़ कहाँ-२७

स्तम्भ : बालवाटिका-२६, भजनावली-२८, बिन्दु बिन्दु विचार-३४

ईमेल- **shantidharmijind@gmail.com**

कार्यालय :

सम्पादक शांतिधर्मी, **पो बाक्स नं० 19**
मुख्य डाकघर जींद 126102
७५६/३, आदर्श नगर, सुभाष चौक, जीन्द–१२६१०२ (हरि०)
दूरभाष : 9996338552
ईमेल- **shantidharmijind@gmail.com**

पूर्ण सम्पादक मण्डल अवैतनिक है। पत्रिका में व्यक्त लेखकों के विचारों से सम्पादक मण्डल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। किसी भी प्रकार के विवाद का न्याय क्षेत्र जीन्द होगा।

❒सहदेव समर्पित

नवसंवत् शुभ हो!

नवसवंत्सर एक शुभकामनायें आदान प्रदान करने का ही अवसर नहीं है। यह अवसर है अपने आपको पहचानने का। यह प्रतीक है हमारी संस्कृति का, संस्कार का, इतिहास का, धरोहर और उसकी समृद्धि का। यह संवत्सर देश को नीचा दिखाने वाली सब कुटिलताओं का उत्तर है। उनका जो सृष्टि का आरम्भ ईसा से चार हजार वर्ष पहले मानते हैं। एक उत्तर डार्विन के विकासवाद का! एक उत्तर उनको जिनको २००० से ज्यादा गिनती नहीं आती। वे हर पुरानी बात को इन्हीं दो हजार सालों में गिनते हैं। जैसे गांव में हमारी निरक्षर माताएँ गिनती है– दो कम पचास, ऐसे ही ईसा पूर्व।

यह प्रमाण है हमारे विज्ञान का, हमारे स्वाभिमान का! यह प्रमाण है आर्यावर्त के सार्वभौम चक्रवर्ती साम्राज्य का! यह केवल नववर्ष का आरम्भ ही नहीं है, यह मुंहतोड़ उत्तर है हमारे प्राचीन इतिहास को मिथक मानने वाले परान्न भोजियों का। जैसे कुएँ के मेंढक को यह विश्वास नहीं होता कि कुएँ से बड़ा कोई तालाब भी होता है। ऐसे ही दो हजार तक गिनती जानने वालों को यह विश्वास ही नहीं होगा कि एक अरब छियानवे करोड़ आठ लाख तिरेपन हजार एक सौ बीस वर्षों से सालों की गिनती की जा रही है। अब जिनको आर्यों का इतिहास इतना प्राचीन होने पर संदेह हो तो उन्हें जानना चाहिये कि जो प्रमाण २०२० साल वाली काल गणना के हैं, वही प्रमाण एक अरब वाली काल गणना के भी हैं। अपनी आयु के पहले के सन को तो पूर्वजों से सुनकर या पढ़कर ही मान रहे हैं न! ऐसे ही हमारे प्राचीनतम ग्रंथों में इसका उल्लेख है और हमारे पूर्वज संकल्पपाठ में इसका उच्चारण कर इसको सुरक्षित करते आये हैं।

एक बात और– स्वतंत्र भारत में जब सरकार ने भारत के संवत्सर के रूप में ईस्वीय सन को मान्यता दी तो भारतीय जनमानस ने कभी हृदय से इसे स्वीकार नहीं किया। न केवल सारे त्यौहार, पर्व बल्कि सारे पारिवारिक आयोजन आज भी स्वदेशीय तिथियों के आधार पर मनाये जाते हैं।

आईये, अपने होने पर गर्व करें। अपने आर्य होने पर गर्व करें। अपने श्रेष्ठ पूर्वजों पर गर्व करें।

कोरोना भगवान

कोरोना संक्रमण है ने पूरी मानवता को आतंकित किया हुआ है। अब तक लाकडाऊन सुना ही था। अब देख लिया। संक्रमण से फैलने वाली बिमारियों की रोकथाम के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में 'बंधी' की जाती रही है। इसे रोकने का उपाय संक्रमण की कड़ी को तोड़ना है, इससे हमारे पूर्वज परिचित थे। अब वे प्रयास व्यापक स्तर पर किये जा रहे हैं। लोग जागरूक हैं। आशा है इसे जल्दी ही निर्यंत्रित किया जा सकेगा।

कोरोना की बंधी में और जगहों की तरह मन्दिरों और अन्य धार्मिक संस्थानों को भी बंद किया गया। ऐसे में नास्तिकों को भी अपना राग अलापने का अवसर मिल गया कि अब भगवान कहाँ है? जो ईश्वर को नहीं मानते उनको नास्तिक कहना रूढ़ हो गया है। वास्तव में नास्तिक उसको कहते हैं जो तर्क का, ज्ञान का, विद्या का विरोधी हो। इस दृष्टि से ईश्वर की सत्ता को न मानने और न जानने वाला भी नास्तिक की श्रेणी में आता है, परन्तु जिन अर्थों में आज नास्तिक शब्द का प्रयोग हो रहा है, उन अर्थों में 'अनीश्वरवादी' शब्द अधिक उपयुक्त है। जो व्यक्ति अपनी हर समस्या के लिये ईश्वर को दोषी ठहराते रहते हैं, उनको नास्तिक कहना ही ठीक है क्योंकि वे ईश्वर के स्वरूप को जानते ही नहीं। ईश्वर के स्वरूप व लक्षण को जानने के लिए वेदादि सत्य शास्त्रों का अध्ययन और निदिध्यासन आवश्यक है। लेकिन उन्होंने ईश्वर के बारे में यही सुन रखा है कि वह प्रार्थना करने पर अपने भक्तों को चंगा करता है, उनकी बिमारियाँ दूर करता है। उनकी रसोई बनाकर देता है। बकरे मींढे की भेंट पाकर प्रसन्न होता है। उनके लिए तो ईश्वर उनके सेवक के समान है। वेद का ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है। जो ईश्वर के नियम हैं, उनको कोई बदल नहीं सकता, जो उसने प्रकृति के नियम बनाये हैं, उनको भी कोई बदल नहीं सकता। जीव जो कर्म करने में स्वतंत्र है और फल भोगने में पराधीन है, वह अपने अच्छे या बुरे कर्मों के फल भोगता है। इस नियम को भी कोई बदल नहीं सकता। कुछ काम ऐसे हैं जिन्हें केवल ईश्वर ही कर सकता है, मनुष्य नहीं कर सकता जैसे मिट्टी बनाना। कुछ काम ऐसे हैं जिन्हें मनुष्य ही कर सकता है, ईश्वर नहीं कर सकता, जैसे मिट्टी से घड़ा बनाना। सर्वशक्तिमान वह इस कारण से है क्योंकि उसे अपने कार्यों के लिये दूसरों की सहायता नहीं लेनी पड़ती। जीव अल्पशक्तिमान इसलिये है क्योंकि उसे अपने हर कार्य के लिये दूसरों की सहायता लेनी पड़ती है। 'कोरोना' मनुष्य के ही नियम विरुद्ध आचरण का परिणाम है। वैदिक दर्शन में दूसरे जीवों से प्राप्त दुःख आधिभौतिक दुःख की श्रेणी में आते हैं। ईश्वर के लिये भौतिक शरीर से जीवों का अलग होना दुःख का हेतु नहीं है। यह जीव की दृष्टि से ही दुःख है। ईश्वर ने कभी यह दावा नहीं किया कि यह शरीर अमर या शाश्वत है। जन्म है तो मृत्यु है। इन दुःखों की निवृत्ति तो अत्यंत पुरुषार्थ से ही होगी। आपदाओं से बचाव, सुरक्षा के उपाय और सामूहिक दायित्त्व की भावना मनुष्य का स्वयं का कर्तव्य है।

आपकी सम्मतियाँ

प्रगतिशील वैदिक विचारधारा से ओतप्रोत मासिक पत्रिका शान्तिधर्मी में मेरे लेख के प्रकाशित करने हेतु कोटि-कोटि धन्यवाद। मैं प्रयास कर रहा हूं व प्रयासरत हूं, कि अधिकांश लोगों के पास पहुंच सके। ऋषि दयानंद सरस्वती के विचारों का प्रचार जन सामान्य के मध्य पहुंचे, यह भी महत्वपूर्ण है, आप विषम परिस्थितियों में भी यथाशक्ति लगे हैं। यह वर्तमान समय में सर्वोत्तम है। पुनः बधाई।

डॉ० श्वेतकेतु शर्मा
(पूर्व सदस्य हिन्दी सलाहकार समिति भारत सरकार)
१०, केलाबाग, सावित्री सदन, बरेली (उ० प्र०)

शान्तिधर्मी का फरवरी २०२० अंक प्राप्त हुआ। आत्म चिन्तन में समर्पित जी द्वारा जागरण पर्व के अंतर्गत स्वामी दयानन्द, गुरुदत्त विद्यार्थी, महात्मा मुन्शीराम, पंडित लेखराम आदि के जागरण का वर्णन प्रेरणादायक था। मानवता के मान के अंतर्गत 'कर्तव्यपालन का महत्व और कर्तव्यहीनता समस्याओं की जड़ है।' यह सत्प्रेरणा बड़ी ही मार्गदर्शक है। बोध दिवस पर अन्य सामग्री भी अत्यंत मार्गदर्शक है। प्राचार्य सहरावत जी द्वारा 'राष्ट्र सेवा है चरित्र निर्माण' कर्म को ही धर्म मानने की प्रेरणा हमें अपने कर्म के प्रति जागरूक करती है। डॉक्टर विवेक आर्य रचित स्वामी दयानन्द और हिन्दू समाज के अनुसार स्वामीजी की शिक्षा फिर से जीवित करने की आवश्यकता है। डॉ० श्वेतकेतु शर्मा प्रस्तुत 'शिव व शिवरात्रि : एक दृष्टि' जानकारी ज्ञानवर्धक है। थोड़े शब्दों में कहें तो धर्म, अध्यात्म एवं देश प्रेम से यह पत्रिका ओत-प्रोत है। इसके लिए समर्पित जी व पूरी टीम बधाई की पात्र है।

श्रीप्रकाश यादव (संस्कृत अध्यापक)
गाँव पहराजवास, पोस्ट पाल्हावास
जिला रेवाड़ी-१२३४०१ (हरियाणा)

ज्ञानवर्धक मासिक पत्रिका शांतिधर्मी का फरवरी २०२० का नवीनतम प्राप्त हुआ, बहुत-बहुत धन्यवाद! मुख्य पृष्ठ पर स्वामी दयानंद तथा आर्यसमाज को और मजबूत बनाने वाले महापुरुषों के चित्र प्रेरणादायक लगे। पत्रिका के दूसरे पृष्ठ पर आध्यात्मिक गतिविधियां वैदिक रीति रिवाजों को बढ़ावा देने वाली लगीं। आत्मचिंतन में संपादकीय 'जागरण का पर्व' शिवरात्रि को जागरण का पर्व ठीक ही कहा क्योंकि यह मनुष्य को अज्ञान, अंधविश्वास, रूढ़ीवादी विचारधारा की निद्रा से जगाने वाला है। शिवरात्रि के पर्व का आर्यसमाज के लिए विशेष महत्व है क्योंकि इसी दिन इस क्रांतिकारी आंदोलन के प्रणेता, मूल शंकर विद्यार्थी का पत्थर की मूर्ति रूपी भगवान से मोहभंग हो गया था। वे सच्चाई की खोज में जगह-जगह भटकते रहे, संतों महंतों से मिलते रहे। लेकिन उनको सच्चा ज्ञान उनके गुरु स्वामी विरजानंद से ही प्राप्त हुआ! जब उनका ज्ञान अपने गुरु से पूर्ण हो गया तो गुरुजी ने उनसे दक्षिणा के तौर पर अपनी यह इच्छा व्यक्त की कि आप संसार में जाएं, वैदिक धर्म का प्रचार करें, लोगों में अंधविश्वास, रूढ़िवादी विचारधारा, जात पात, छुआछूत को समाप्त करें, महिलाओं की खोई हुई प्रतिष्ठा को बहाल करें। स्वामी दयानंद ने आर्यसमाज की स्थापना की और अपने विचार सत्यार्थप्रकाश नाम के ग्रंथ में समाहित किए। आर्यसमाज से संबंधित और भी बहुत सारे महापुरुषों ने अहम भूमिका अदा की है। इस संपादकीय का उद्देश्य लोगों को अज्ञानता की निद्रा से जगाना है। गीता में भी कहा गया है कि जब दूसरे लोग सो रहे होते हैं तो योगी लोग जागते हैं। शिवरात्रि का पर्व लोगों को जगाने के लिए है। देवों के देव, महादेव कभी सोते नहीं हैं, सांसारिक प्राणियों को जगाने का काम करते रहते हैं। श्री सहदेव समर्पित की कविता- 'आज दिशाएं करें आरती दयानंद ऋषिराज की!' प्रेरक और विचारोत्तेजक है। डॉ० स्वर्ण किरण की कविता 'अच्छा नहीं समझते' प्रशंसा के काबिल है। आचार्य विष्णुमित्र वेदार्थी का लेख 'कैसे बनेंगे बोध के अधिकारी' ज्ञानवर्धक है। प्राचार्य पृथ्वी सिंह सहरावत का लेख 'राष्ट्र सेवा है चरित्र निर्माण' शिक्षाप्रद तथा मार्गदर्शन करने वाला है। डॉ० विवेक आर्य का लेख स्वामी दयानंद की हिंदू समाज के उत्थान में भूमिका का उल्लेख करने वाला है। उन्हीं के कारण हिंदू समाज आज सिर उठाकर चल रहा है। मिलन आर्य प्रस्तुत पं० रामचन्द्र देहलवी का लेख 'धर्म और अधर्म' ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ मार्गदर्शन करने वाला और 'धर्म' के संबंध में प्रचलित अनेक प्रकार के भ्रमों का निवारण करने वाला भी है। डॉक्टर मनोहर लाल अग्रावत का लेख 'अमृतोपम तुलसी' हमेशा की तरह उपयोगी है। बाल वाटिका ज्ञानवर्धक, मनोरंजक तथा दिमाग की कसरत करने वाली है। सुमेधा आर्य का लेख 'छोटी छोटी सीख' शिक्षाप्रद है। पत्रिका के अन्य रचनाएं भी इसे चार चांद लगाने वाली हैं।

प्रोफेसर शामलाल कौशल (9416359045)
मकान नंबर 975 बी
ग्रीन रोड, रोहतक १२४ ००१ हरियाणा

इस खेल का ही दूसरा नाम यज्ञ है। खेल में कोई किसी का विरोधी नहीं होता। यज्ञ होते हैं वैर-विरोध के बिना। चोटें लगती हैं, शरीर घायल हो जाते हैं पर दिल पर जख्म नहीं आता। खेल अध्वर है। खेल में चोट की नहीं, उसके लगाने की विधि को देखते हैं। चोट खाकर स्वयं चोट खाने वाला चोट लगाने वाले के गले मिल रहा है।

अनुशीलन सामवेद : आग्नेय पर्व

खिलाड़ी

-लेखकः पं० चमूपति

अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवां देवयते यज।
होता मन्द्रो विराजस्यति स्रिधः।।७।।

ऋषिः-विश्वामित्र-सबका मित्र

(अग्ने) हे अग्नि-देव! (यजिष्ठ) तुम सबसे बड़े यजमान हो। मुझ (देवयते) खेलना चाहते वाले के लिए तुम (अध्वरे) क्रीड़ा-क्षेत्र में (देवान्) खिलाड़ियों को (यज) एकत्रित करो। तुम (स्रिधः अति) हिंसकों की पहुंच से बाहर (होता) यज्ञ के लिए पुकारते हो। (मन्द्रो) मस्ती ला-लाकर (विराजसि) खूब सुशोभित होते हो।

प्रभो! हम देव बनना चाहते हैं। हमारी इच्छा अब जीवन को खेल बना देने की है। संसार में जड़-चेतन सभी प्रसन्न प्रतीत होते हैं। बादल खुशी से छलांगें मार रहे हैं। हवा उछल रही है, दौड़ रही है। झरने मस्त हो-होकर भाग रहे हैं। नदियाँ कल्लोल करती हैं। वृक्ष झूम रहे हैं। पक्षी चहचहा रहे हैं, फूल प्रफुल्ल- वदन हैं। पत्ते नाच रहे हैं, और तो और, घास तक लहलहा रही हैं- लहलहा रही है और गा रही है। संसार सचमुच क्रीड़ागार है। जीने का मजा खेल में है।

इस खेल का ही दूसरा नाम यज्ञ है। खेल में कोई किसी का विरोधी नहीं होता। यज्ञ होते हैं वैर- विरोध के बिना। चोटें लगती हैं, शरीर घायल हो जाते हैं पर दिल पर जख्म नहीं आता। खेल अध्वर है। वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति। खेल में चोट की नहीं, उसके लगाने की विधि को देखते हैं। नियमानुसार लगाई हुई चोट ही नहीं मानी जाती। चोट खाकर स्वयं चोट खाने वाला चोट लगाने वाले के गले मिल रहा है। खेल की शोभा, चोट न समझी जाने वाली इन चोटों से ही है।

प्रभो! क्या हमारा सारा जीवन इस प्रकार का एक लम्बा खेल नहीं बन सकता? हमें चोटों ने कभी इतना दुःखी नहीं किया जितना उन्हें चोट समझने ने। प्रहार में प्रहारबुद्धि ही न हो तो वह प्रहार नहीं रहता। जो प्रहार करे, उसके लिए भी और जिस प्रहार किया जाए उसके लिए भी।

यही देव-वृत्ति है। अग्नि-देव! तुम देवताओं के अगुवा हो। तुम्हारे खिलाड़ीपन के तो कहने ही क्या हैं? घर फूंक तमाशा देख- यह खेल खेलना तुम्हीं को आता है। सर्वस्व स्वाहा कर, खड़े खिल खिलाना-यह लीला कोई तुम्हीं से सीखे। तुम 'यजिष्ठ' हो-सबसे बड़े खिलाड़ी। तो फिर अपने यजमान को भी तो खेलना सिखा दो। अकेले में व्यायाम तो किया जा सकता है, पर खेल नहीं। खेल के लिए और भी खिलाड़ी चाहिएं। यज्ञ इकले करने की वस्तु नहीं। यजमानों का समूह इकट्ठा कर दो। जब तक और यजमान नहीं बनते, देवों को ही यजमान बना दो। मेरी आहुति की सुर-ताल हवा से, पानी से, चाँद से, सूर्य से मिला दो। विश्व-याग की वेदी पर मैं इनके साथ मिल कर आहुति दूँ।

अग्नि-देव! कोई तुम्हारी हिंसा क्या करेगा? तुम हिंसकों की पहुंच से परे हो। जिसका राग ही स्वाहा है, उसे कोई और क्या जला लेगा? जो दिन-रात आहुति दे-देकर खुश हो रहा है, उसे कोई सताएगा क्या! तुम मस्त हो-अपनी आहुति पर मस्त हो। अपनी आँच का ईंधन बनकर मस्त हो। जल जल कर हँसते हो। फिर कोई तुम्हें और आँच क्या दे? तुम्हारी यही वृत्ति क्रीड़ावृत्ति है।

तुम खेल रहे हो और दूसरों को खेल के लिए पुकार रहे हो। हिल रही जिह्वा से पुकार रहे हो। उठी हुई भुजाओं से पुकार रहे हो। खिल रहे कपोलों से पुकार रहे हो। हँस रहे ओंठों से पुकार रहे हो। आबदार दांतों से पुकार रहे हो। चमक रहे नेत्रों से पुकार रहे हो। तुम्हारे अंग में छा रही इस मस्तानी हंसी के जादू का कोई कैसे संवरण करे?

अग्नि-देव! अकेले मत खेलो। अकेले में व्यायाम तो किया जा सकता है, पर खेल नहीं। खेल के लिए खिलाड़ी चाहिएं। तो क्या मैं आ जाऊं? खिलाओगे?

शांतिप्रवाह
(पुनर्प्रकाशन)
अप्रैल २००९

दयानन्द का आर्यसमाज

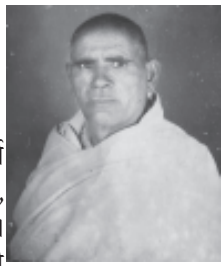

❐स्व० श्री चन्द्रभानु आर्य संस्थापक शांतिधर्मी

आर्यसमाज महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित संस्था है। १८७५ में स्थापित आर्यसमाज ने १३३ वर्ष के कार्यकाल में विभिन्न क्षेत्रों में भव्य आयाम-कीर्तिमान् स्थापित किए हैं। इतिहास के विद्यार्थी और समाज के अध्येता इस बात को भली प्रकार जानते हैं। यदि निष्पक्ष भाव से अवलोकन किया जाए तो इस बात में कोई दो मत नहीं कि संस्कृति और समाज के क्षेत्र में राष्ट्रभक्ति, शिक्षा और जनसेवा के क्षेत्र में आर्यसमाज ने जो कार्य किए हैं उनकी तुलना नहीं की जा सकती। आर्यसमाज ने अनेक अवसरों पर अपने तेजस्वी रूप का प्रदर्शन किया है। इसके इतिहास पर गर्व किया जा सकता है। राष्ट्र के निष्पक्ष बुद्धिमान् पुरुषों ने इसके कार्य को सच्चे हृदय से स्वीकार किया है।

किसी भी संस्था में इतने लम्बे समय में संगठनात्मक रूप से कुछ कमियाँ आ जाना एक स्वाभाविक बात है। लेकिन वे न्यूनताएँ सामयिक होती हैं। वे न्यूनताएँ क्यों आती हैं, और कैसे दूर की जा सकती हैं, इसके लिए उस संस्था के निर्माण की पृष्ठभूमि और उसके निर्माता की योजना को देखना आवश्यक है। ऋषि साक्षात्कृद्धर्मा होता है, उसके सामने केवल तात्क्षणिक चिन्तन नहीं होता। उसकी दृष्टि भविष्य पर भी होती है। ऋषि दयानन्द के मस्तिष्क में संभावित समस्याओं का समाधान था। इसलिए आर्यसमाज की समस्याओं का समाधान करने के लिए ऋषि के विचारों को देखना होगा। सत्य को स्थापित करने के लिए असत्य का विरोध- बल्कि प्रचण्ड विरोध तो आवश्यक है ही। इस कारण आर्यसमाज के विरोधियों का होना भी कोई अस्वाभाविक बात नहीं है पर ईश्वर की व्यवस्था में असत्य सत्य को पराजित नहीं कर सकता। हाँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष रूप से आर्यसमाज की योजना को, दृष्टिकोण को नहीं जाना, वे विरोधियों के बनाए चित्र को देखकर ही आर्यसमाज के विषय में कोई धारणा बनाएँगे। यह धारणा अवश्य ही अशुद्ध होगी। अतः आर्यसमाज को यथार्थ रूप में जानने के लिए भी दयानन्द और उसके दृष्टिकोण को जानना ही होगा।

स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना क्यों की? यदि इस बात का एक वाक्य में उत्तर देना हो तो वह है संसार का उपकार करने के लिए। संसार में कोई जाति, वर्ग, सम्प्रदाय, भूखण्ड नहीं, कोई एक मनुष्य प्राणी भी नहीं। संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य बताया। संसार में किसी अन्य संस्थापक का इतना व्यापक दृष्टिकोण नहीं हो सकता। उपकार का भी प्रायः यही अर्थ लिया जाता है कि जरूरतमन्दों की सहायता करना-- अधिक उदारता होगी तो कहेंगे भूखे को रोटी, वस्त्रहीन को कपड़ा, घरहीन को आश्रय--। संसार के उपकार का अर्थ बताते हुए कहते हैं- शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। रोटी देने से भी बढ़कर है उसे रोटी अर्जित करने के लिए सक्षम बना देना। मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की तो २८ नियम बनाए।

उनमें पहला नियम रखा- सब मनुष्यों के हितार्थ आर्यसमाज का होना आवश्यक है। इसका व्याख्यान करते हुए कहा कि इस समाज से धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति मनुष्यों को होगी। सत्य असत्य की तुलना करने में सक्षम होकर मनुष्य असत्य का परित्याग और सत्य के अनुसार आचरण करने में सक्षम हो सके, इसके लिए प्रयत्न करना ही तो सच्चा उपकार है। स्वामी दयानन्द पक्षपात रहित न्याययुक्त व्यवहार को धर्माचरण कहते हैं। इससे बढ़कर कौन सा सार्वभैम धर्म हो सकता है जो मनुष्य समाज को एकता के सूत्र में बांध दे।

आर्यसमाज ने अपने संस्थापक के उद्देश्यों के अनुरूप कार्य करते हुए असंख्य लोगों को पाखण्ड, अंधविश्वास, मत मतान्तरों की दादागीरी से बचाने का मार्ग प्रशस्त किया तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को सबके लिए सुलभ बना दिया। जहाँ तक सांगठनिक कमियों की बात है- स्वामी दयानन्द का इसके विषय में स्पष्ट दृष्टिकोण था। इन्हीं २८ नियमों में आठवां नियम है- इस समाज में सत्पुरुष, सद्नीति, सदाचरणी जनों के हितकारक समाजस्थ किए जाएँगे। इसकी व्याख्या में कहते हैं- दुष्ट मनुष्य के सभासद् होने से समाज को दोष लगता है। इसलिए दुष्ट को सभासद् शीघ्र नहीं करना।- तो फिर दुष्ट के लिए कोई मार्ग नहीं? ऐसा नहीं है। आगे कहते हैं-'किन्तु जो दुष्टता छोड़ने के लिए और सज्जनता ग्रहण करने के लिए निष्कपट होके सभासद् हुआ चाहे सो हो सकता है।'

लोग संगठन की कमी का रोना रोते रोते बूढ़े हो गए। स्वामीजी के देहान्त के बाद ही विचार भेद शुरु हो गए थे। फिर भी इतने काम हुए। पंच महायज्ञ करने से, बताईये कौन रोकता है। संध्या, स्वाध्याय करेंगे तभी तो पक्षपात छूटेगा। २२ वें नियम में कहते हैं- 'सब सभासद् परस्पर प्रीत्यर्थ अभिमान हठ दुराग्रह और क्रोधादि दुर्गुण सब छोड़के उपकार सुहृदता से सबसे निर्वैर होके स्वात्मवत् संप्रीति सबको करनी होगी।'

दयानन्द ने तो स्पष्ट कर दिया कि संसार का उपकार कैसे होगा, और संगठन कैसे मजबूत होगा। अब यह मनुष्य के ऊपर है कि वह सामाजिक सर्वहितकारी नियमों का पालन करने लिए अपने आप को तैयार करे और पक्षपातरहित न्याययुक्त धर्म का आचरण करे। ❐❐❐

आवाम की सोचो।।

पहले तो जो करना है, उसी काम की सोचो।
फिर गौर से उस काम के अंजाम की सोचो।।
जो खास है उनकी तो हिफाजत हुई सदा,
अब खास से पहले ही सभी आम की सोचो।।
बदनाम होने के लिए गुनाह एक ही काफी,
इज्जत से सभी ले सकें उस नाम की सोचो।।
सुख दु:ख जहां में आते हैं हरिक इन्सान पर,
उगते हुए सूरज की जगह शाम की सोचो।।
रहबर हो अगर कौम के तो अपनी छोड़कर,
इस मुल्क की मुफलिस हुई आवाम की सोचो।।
तकदीर को बुलंद कराने की राह पर,
ईमानदारी के किसी आयाम की सोचो।।
भय ही नहीं इलाज किसी गम का 'साज' जी
दिल को संभालिए न किसी जाम की सोचो।।

–ज्ञानेन्द्र साज सम्पादक जर्जर कश्ती, अलीगढ़

काहे मोह बढ़ाये बन्दे!

काहे मोह बढ़ाये बन्दे! यह संसार बिराना।
एक दिवस यह मृग-मरीचिका छोड़ तुझे है जाना।।

घर परिवार मीत सब रिश्ते मृत्युलोक की माया।
सब हैं बंधे स्वार्थ में अपने माया ने भरमाया।।
साथ नहीं कोई जा पाये तनहा पड़े तिराहा।।
काहे मोह बढ़ाए बन्दे! यह संसार बिराना।।

धन के पीछे भाग एक दिन जब तू थक जाएगा।
घर सम्पत्ति स्वर्ण आभूषण साथ न ले पाएगा।।
जिस रुतबे पर गर्व कर रहे पल भर में मिट जाना।।
काहे मोह बढ़ाए बन्दे! यह संसार बिराना।।

द्वेष और अभिमान किसलिए ऊँच नीच की खाई?
बैर और शत्रुता घृणा ही तूने सबसे पाई।।
बुद्धि विवेक प्रेमभावों का जोड़ो ताना बाना।।
काहे मोह बढ़ाए बन्दे! यह संसार बिराना।।

ईश्वर ने तुझको भेजा था मानव धर्म निभाने।
करुणा दया त्याग बिसराया तू जाने अनजाने।।
जिसने जन्म दिया उसको ही भूल गया दीवाना।
काहे मोह बढ़ाए बन्दे! यह संसार बिराना।।

❐डॉ० सुरेश प्रकाश शुक्ल
–सम्पादक प्राची प्रतिभा मासिक
५५४/९३ पवनपुरी लेन ९ आलमबाग, लखनऊ- ०५

आइये बदलें

लग गई चन्दन वनों में आग
जल रही मधुगन्ध की दुनिया
स्वर्ण मृग के लिए भागे फिर रहे हैं हम
एक मायाजाल में नित घिर रहे हैं हम
हाथ में आदर्श की ऊँची ध्वजायें पर
लोभ के अंधे कुयें में गिर रहे हैं हम
दब रही सिक्कों तले आवाज
घुट रही आनन्द की दुनिया
बिम्ब हैं विकलांग दर्पण में भविष्यत् के
आग, आँसू दे गये कागज वसीयत के
पाप से गंगा प्रदूषित कर रहे, ऐसे
जनविरोधी वंशधर जन्मे भगीरथ के
गल रहे संकल्प के हिमवान
चुक रही अनुबंध की दुनिया
इस धरा पर स्वर्ग के सपने दिखाते हैं
नींव में बालू भरी घर थरथराते हैं
झूठ के हर कारवाँ में सच अकेला है,
अब न गौतम और गाँधी याद आते हैं
है उपेक्षित लोकहित बलिदान
फल रही जयचन्द की दुनिया
नग्नता सौन्दर्य की अब मान्य भाषा है
लोचनों में भोग की जलती पिपासा है
लाभ ही आधार है जब नेह नातों का
ढूंढना संस्कृति वहाँ केवल दुराशा है।
आइये बदलें समय की धार
छोड़ कर भुजबन्ध की दुनिया

❐डॉ० कैलाश निगम
४/५२२, विवेक खण्ड-४ गोमतीनगर, लखनऊ

सहदेव समर्पित

न जाने मन कहाँ की सोचता है?
वहाँ क्या है जहाँ की सोचता है!!
जमीं पर दो कदम भी चल न पाया,
ये बातें आसमां की सोचता है।।
नहीं स्वीकार उठना या कि गिरना,
ये उनके दरमियां की सोचता है।।
बड़ी आसान है राहें जहाँ की,
मगर ये दो जहां की सोचता है।।
नहीं मुमकिन जहाँ से लौट आना,
चले जाना वहाँ की सोचता है।।

कुछ पढ़े लिखे भारतीय अपनी जड़ों से कटे क्यों हैं!

❐मारिया विर्थ (मूल अंग्रेजी से अनुवाद- **डॉ० विजय कुमार सिंघल**)

(मारिया विर्थ एक जर्मन लेखिका हैं जो ३३ साल से फ्रीलांस लेखन करती हैं।)

यदि भारत अपनी सुदृढ़ और सर्वसमावेशी हिन्दू परम्पराओं का पालन करे तो इस देश को लाभ ही होगा और हानि नहीं होगी। कुछ समय पहले दलाई लामा ने कहा था कि जब वे ल्हासा में एक युवक थे तब वे भारतीय विचारधारा की समृद्धि से गहराई तक प्रभावित हुए थे और भारत में संसार की सहायता करने की महान् संभावनायें हैं।

हालांकि मैं भारत में बहुत लम्बे समय तक रही हूँ, लेकिन बहुत सी बातें आज भी मेरी समझ में नहीं आतीं। उदाहरण के लिए- बहुत से पढ़े-लिखे भारतीय क्यों आक्रामक हो जाते हैं जब भारत को हिन्दू राष्ट्र कहा जाता है? अधिकांश भारतीय हिन्दू हैं, प्राचीन हिन्दू परम्पराओं के कारण ही भारत विशेष है। हिन्दुत्व के कारण ही विदेशी भारत की ओर आकर्षित होते हैं। फिर क्यों बहुत से भारतीय अपने देश के हिन्दू मूल को स्वीकार करने का विरोध करते हैं? क्यों कुछ लोग यह बात डालना चाहते हैं कि उस मूल को स्वीकार कर लेने पर भारत खतरनाक हो जाएगा? क्या वे इस बात को अधिक अच्छी तरह नहीं जान सकते?

यह रवैया दो कारणों से विचित्र है। पहला, उन शिक्षित भारतीयों को 'हिन्दू' भारत से ही समस्या है, 'मुस्लिम' या 'ईसाई' देशों से नहीं। उदाहरण के लिए, जर्मनी एक पंथनिरपेक्ष देश है, और केवल ५९ प्रतिशत जनसंख्या दो बड़े ईसाई चर्चों (प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक) में पंजीकृत है। फिर भी उस देश को ईसाई देश कहा जाता है और कोई इस बात का विरोध नहीं करता। चांसलर एंजेला मर्केल ने हाल ही में जर्मनी के ईसाई मूल पर जोर दिया है और अपनी प्रजा से कहा है कि ईसाई मूल्यों की ओर लौटो। २०१२ में उन्होंने कैथोलिक दिवस पर भाषण देने के लिए जी-८ सम्मेलन में जाने की अपनी यात्रा स्थगित कर दी थी। एंजेला मार्केल की क्रिश्चियन डेमोक्रेटिक यूनियन सहित दो बड़ी पार्टियों के नाम में 'क्रिश्चियन' अर्थात् 'ईसाई' शब्द है।

जर्मन लोग इस बात पर आपत्ति नहीं करते कि जर्मनी को ईसाई देश कहा जाता है, हालांकि यदि वे आपत्ति करते, तो बात समझ में आती। आखिर, चर्च का इतिहास बहुत भयावह है। ईसाईयत की तथाकथित सफलता अधिकांश में उत्पीड़न अर्थात् अत्याचारों की कहानी है। 'ईसाई बनो या मरो' ये विकल्प न केवल लगभग ५०० वर्ष पहले अमेरिका के मूल निवासियों को दिये गये थे, बल्कि १२०० वर्ष पहले जर्मनी में भी दिये गये थे, जब सम्राट कार्ल महान् ने पराजित नागरिकों को ईसाई न बनने पर मौत की सजा दी थी। इस पर उसके अनुयायी अलकुइन ने टिप्पणी की थी- 'उनको कोई ईसाई बना सकता है, लेकिन उन्हें विश्वास करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।'

वे दिन अब बीत गये हैं जब ईसाइयत के सिद्धांतों से मतभेद रखने पर ही किसी का जीवन खतरे में पड़ जाता था। अब पश्चिम में बहुत से लोग मतभेद रखते हैं और बड़ी संख्या में चर्च को छोड़ रहे हैं। वे चर्च अधिकारियों के अपवित्र व्यवहार से घृणा करते हैं और उनके सिद्धांतों में भी विश्वास नहीं कर सकते, जैसे कि 'जीसस एक मात्र मार्ग है' और यह कि 'जो इस बात को स्वीकार नहीं करते, उन सबको ईश्वर नरक में भेज देता है।'

इसका दूसरा कारण कि मैं भारत को हिन्दुत्व से जोड़ने पर होने वाले विरोध को नहीं समझ पाती, यह है कि हिन्दुत्व अब्राहम पंथों की श्रेणी से भिन्न है। इसका इतिहास, ईसाइयत और इस्लाम की तुलना में, सबसे कम हिंसक है। इसको प्राचीन काल में प्रवचनों द्वारा फैलाया गया था, बलपूर्वक कभी नहीं। यह कोई ऐसा मत नहीं है, जो इसके सिद्धांतों को अंधविश्वासपूर्वक मानने और बुद्धि को उठाकर ताक पर रख देने की माँग करता हो। इसके विपरीत, हिन्दुत्व तो अपनी बुद्धि का अधिकतम उपयोग करने पर बल देता है। यह चरित्र और ज्ञान के आधार पर सत्य को खोजने का मार्ग है। इसमें प्रचुर प्राचीन साहित्य उपलब्ध है, जो न केवल धर्म और दर्शन के बारे में है, बल्कि संगीत, वास्तु, नृत्य, विज्ञान, खगोल विज्ञान, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि के बारे में भी है। यदि जर्मनी या किसी अन्य पश्चिमी देश के पास ऐसा साहित्य होता, तो वह उस पर गर्व करता और हर अवसर पर उसकी महानता को प्रचारित करता।

उदाहरण के लिए, जब मैंने उपनिषदों की खोज की, तो मैं देखकर दंग रह गयी। इनमें स्पष्ट शब्दों में वह कहा गया था जो मैंने अनुभव किया था कि यह सत्य है, पर उसको इतनी स्पष्टता से व्यक्त नहीं कर सकती थी। ब्रह्म

कोई अलग नहीं है, यह अदृश्य और प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। प्रत्येक व्यक्ति को अन्तिम सत्य खोजने का अवसर बार-बार मिलता रहता है और वह इसके लिए अपना मार्ग चुनने में पूरी तरह स्वतंत्र होता है। इसमें सहायता करने वाले संकेत दिये जाते हैं, पर वे थोंपे नहीं जाते।

भारत में अपने प्रारम्भिक दिनों में मैंने सोचा था कि प्रत्येक भारतीय को अपनी इन परम्पराओं का ज्ञान और गर्व होगा। लेकिन धीरे-धीरे मुझे पता चल गया कि मैं गलत थी। ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासक न केवल बहुत से अभिजात भारतीयों को उनकी प्राचीन परम्पराओं से दूर रखने में सफल रहे, बल्कि उनको नकारने तक पहुँचा दिया। इस बात से भी उनको सहायता मिली कि अंग्रेजी शिक्षित भारतीय अपने मौलिक संस्कृत साहित्य को पढ़ने में असमर्थ हो गये और जो अंग्रेजों ने उनको बताया उसी पर विश्वास करने लगे। ज्ञान का यह अभाव और अंग्रेजी शिक्षा द्वारा ब्रेनवाशिंग ही इसका मुख्य कारण बना कि बहुत से 'आधुनिक' भारतीय हर हिन्दू बात का विरोध करने लगे। वे पश्चिमी पंथों, जिनमें आँख मूँदकर विश्वास किया जाता है या कराया जाता है और जिनमें अपनी बुद्धि का उपयोग करके सोचने को हतोत्साहित किया जाता है, भले ही रोका न जाता हो, तथा अनेक पर्तों वाले हिन्दू धर्म, जिसमें अपनी बुद्धि का उपयोग करने की स्वतंत्रता और प्रोत्साहन दिया जाता है, के बीच अन्तर को नहीं समझ रहे।

बहुत से शिक्षित भारतीय नहीं समझते कि जो लोग इस विशाल देश पर ईसाइयत या इस्लाम थोंपने का सपना देख रहे हैं वे हिन्दूधर्म की आलोचना पर तो ताली पीटेंगे ही, क्योंकि इससे एक खालीपन पैदा होगा जिसमें पश्चिमी विचार जड़ पकड़ सकते हैं। इसके साथ-साथ बहुत से पश्चिमी लोग जिनमें कट्टर ईसाई भी शामिल हैं, हिन्दू सभ्यता का महत्व जानते हैं और इसके विशाल ज्ञान भंडार में से मोती चुनकर उनका हिन्दू सन्दर्भ काटकर उन्हें अपने विचारों या पश्चिमी देशों में पहले से ज्ञात विचारों के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जहाँ पश्चिम में मूल्यवान और विलक्षण हिन्दू धरोहरों को सम्मान दिया जाता है, वहीं यहाँ के लोग स्वयं को हीन समझते हैं। अनजाने में ही ये भारतीय उस प्रवृत्ति की सहायता कर रहे हैं, जिसको राजीव मल्होत्रा ने पश्चिमी सार्वभौमिकता द्वारा हिन्दू सभ्यता को पचाना कहा है। जिसको पचाया जाता है, जैसे कोई हिरण, तो वह वस्तु (यहाँ हिन्दू धर्म) गायब हो जाती है और उसको पचाने वाला, जैसे बाघ, अधिक मजबूत हो जाता है।

यदि केवल मिशनरी ही हिन्दू धर्म की आलोचना करते, तो इतना बुरा न होता, क्योंकि उनका अपना एक एजेंडा होता है जिसे जागरूक हिन्दू समझ सकते हैं। लेकिन दु:ख इस बात का है कि हिन्दू नामधारी भारतीय उनकी सहायता करते हैं, क्योंकि वे गलती से यह विश्वास करते हैं कि पश्चिमी धर्मों की तुलना में हिन्दू धर्म बहुत तुच्छ है। वे पूरा ज्ञान प्राप्त करने के बजाय हर हिन्दू बात को क्षुद्र ठहराते हैं। वास्तव में वे हिन्दू धर्म के बारे में बहुत कम और केवल वही जानते हैं, जो अंग्रेजों ने उनको बताया है, जैसे कि इसकी मुख्य विशेषतायें इसकी जाति व्यवस्था और मूर्ति पूजा हैं। वे नहीं समझते कि यदि भारत अपनी सुदृढ़ और सर्वसमावेशी हिन्दू परम्पराओं का पालन करे तो इस देश को लाभ ही होगा और हानि नहीं होगी। कुछ समय पहले दलाई लामा ने कहा था कि जब वे ल्हासा में एक युवक थे तब वे भारतीय विचारधारा की समृद्धि से गहराई तक प्रभावित हुए थे और भारत में संसार की सहायता करने की महान् संभावनायें हैं।

इस बात को पश्चिमी रंग में रँगे हुए भारतीय कब अनुभव करेंगे?

शिक्षाओं का अनर्थ

शिक्षाओं के अनर्थ का एक उदाहरण बुद्धचरित में इस प्रकार मिलता है। एक भिक्षु को अपनी चर्या में पूरे दिन घूमते रहने पर भी कुछ नहीं मिला। वह अपने संघाराम में लौट रहा था कि रास्ते में उसके पात्र में मांस का एक टुकड़ा गिरा। मांस का टुकड़ा ऊपर उड़कर जा रही चील के मुँह से छूटकर गिरा था। उस दिन सायंकालीन गोष्ठी में इस घटना की चर्चा हुई। नियम था कि पात्र में जो भी आए उसे ग्रहण करना है, तिरस्कार नहीं करना है। दूसरे, भिक्षु क्षुधा से त्रस्त भी था। व्यवस्था दी गई कि अनायास ही मिले मांस का उपयोग किया जा सकता है। व्यवस्था यह सोचकर दी गई थी कि यह अवसर अपवाद रूप है, अन्यथा कहाँ किसी पक्षी के मुँह से मांस का टुकड़ा गिरता है और कौन भिक्षा में मांस देता है। आपद्धर्म की तरह दी गई इस व्यवस्था का दुरुपयोग हुआ और बौद्ध धर्म में मांस का प्रयोग बढ़ने लगा। बुद्ध के दस शीलों में एक शील मद्य-मांस का त्याग भी है। दूसरों का दिया अथवा अनायास सामने आया मांस ग्रहण किया जा सकता है। इस आपद्धर्म ने सामान्य धर्म का रूप ले लिया और लोग पशुओं को पहाड़ की चोटी तक दौड़ाकर ले जाने लगे ताकि वे गिरकर मर जाएँ और उनका मांस खाया जा सके। आश्चर्यचकित कर देने वाला तथ्य है कि दक्षिण एशिया के बौद्ध देश इस समय मांस के प्रमुख निर्यातक देशों में हैं। निर्यात करने वाले व्यापारी खुद पशुओं का वध नहीं करते, दूसरों से कराते हैं।

धर्म के मौलिक सिद्धान्तों को जीवन में उतारना आवश्यक

❑**प्राचार्य पृथ्वीसिंह सहरावत** (सेनि) नाथवास वाले, भिवानी (9255971426)

मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि चाहे हम किसी भी धर्म स्थान- मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारा में जाएँ, अपना माथा टेकें, मनौती मांगें, प्रसाद चढ़ाएं, परन्तु जीवन में अहिंसा, सच्चाई, दया आदि- धर्म के जो मौलिक सिद्धान्त हैं, उनको जीवन में उतारना अति आवश्यक है। व्यक्ति धर्म के मौलिक तत्वों को जीवन में धारण करने से मधुरता का रसास्वादन करने में सक्षम होता है। अन्यथा सभी तीर्थ दर्शन व्यर्थ सिद्ध होते हैं।

वास्तव में धर्म तो जीवन में नव-जागृति पैदा करता है, जिसके सहारे व्यक्ति उन्नति की डगर पर शान्ति के साथ आगे कदम बढ़ा सकता है। यह कार्य उसी समय तक होता रहेगा, जब तक मानव धर्म के मूल आदर्शों का मूल-मंत्र भूलेगा नहीं। धर्म जीवन-शुद्धि का मार्ग है। धर्म को केवल परम्पराओं में बांधे रखना कहाँ तक उचित है! ऐसा करने से तो धर्म की जड़ों को ही आधार-हीन एवं निस्तेज कर दिया जाता है। जैसे जड़ता और चेतना का आपस में कोई संबंध नहीं हो सकता है, वैसे बंधन और धर्म का आपस में मेल हो ही नहीं सकता। मेरा मानना है कि धर्म की साधना से व्यक्ति की अन्तर-आत्मा में एक ऐसी ज्योति, चिंगारी-सी पैदा होती है, जो उसे पल-पल कुमार्गी होने से बचाने के लिए सजग करती रहती है। वह ज्योति व्यक्ति की जड़ता से रक्षा करती है। वह चिंगारी व्यक्ति की चेतना को जाग्रत करती है। मैं अपनी बात बार-बार कहता हूँ कि हम केवल मन्दिरों में दर्शन करने से, साधुओं और सन्तों के दर्शन करने, अनेकों तीर्थ स्थानों का भ्रमण करते रहने से क्या सिद्ध करना चाहते हैं? इससे कुछ बनने वाला नहीं है जब तक हम सच्ची श्रद्धा से धर्म के मूल आदर्शों का पालन नहीं करते हैं।

जब-जब मैं तीर्थ स्थानों में गया, सत्संग देखे और सन्तों के प्रवचन सुनने को मिले और अपने को धन्य किया। साधुओं के भी दर्शन किए। मैंने देखा कि लोग भाग-भाग कर, धक्का-मुक्की करके सन्तों और साधुओं के चरणों की धूल लेते हैं और अपने मस्तक से लगाकर जीवन के संकटों और बाधाओं से छुटकारा मिलने की अपने मन में कल्पना करते हैं। जबकि ऐसा सोचना ही गलत है। हमारे संकट और अनेकों झंझट तब दूर होंगे जब हम उनके आदर्शों का पालन करेंगे, उन जैसा आचरण, संयम, शील, दया वाला स्वभाव बना लेंगे। इन सब बातों को अपने मन की गहराई में बैठा लेना ही 'सच्चा-तीर्थ' माना जाएगा। महाभारत में युधिष्ठिर की तरफ इंगित करते हुए कहा गया है- 'आत्मा' नदी है। संयम उसका पवित्र तीर्थ है। सत्य उस नदी का जल है। शील उसका तट है। दया की लहरें उसमें तरंगित होती हैं। हे युधिष्ठिर! तू उसमें स्नान कर। पानी से अन्तरात्मा शुद्ध होती ही नहीं।'

सत्य और अपरिग्रह का मूल्य

आज के युग में व्यक्ति स्वार्थ में अंधा होकर, अपना विवेक खो चुका है। जीवन के स्वर्ण-मूल्यों को त्याग कर गुड़-गोबर करने वाले असत्य मूल्यों को अपना लिया है। इसलिए व्यक्ति ऊंचे आदर्शों को छोड़ कर पैसे-पैसे को सब कुछ मानने लगा है। इस पैसे के लिए व्यक्ति ने अन्याय, गलत आचरण, अनीति, धोखा, धन का लालच जैसी बुराइयों का सहारा लेकर अपने जीवन को जर्जर बना लिया है। इसी लिए आपसी विश्वास, भाई-चारा, प्रेम-भाव, दयालुता के भाव व्यक्ति के जीवन से छूमंतर हो गए हैं। व्यक्ति की पैसा बटोरने की लालसा ने उसे निर्दयी, बेईमान, और शोषक बना दिया है। पैसा मिल जाए, चाहे कुछ भी करना पड़े-यह मनोवृत्ति निन्दनीय है। इस मनोवृत्ति को बदलना ही होगा। इज्जत केवल पैसे की नहीं होनी चाहिए, पैसा तो भिक्षुक के पास भी हो सकता है। ऐसा हमने अखबारों में पढ़ा है कि एक साधु मर गया तथा उसके खातों में लाखों रूपये जमा थे। प्रतिष्ठा केवल संयम और त्याग की रहे। 'सत्य और अपरिग्रह' की आराधना करते हुए हम जीवन का वास्तविक लक्ष्य पहचानें। अपने जीवन में एक नया परिवर्तन करके स्वयं के जीवन को नए प्रकाश से भर लेवें। जीवन की सफलता का कोई श्रेष्ठ मंत्र यदि है तो केवल और केवल यही एक महान मंत्र है।

सन्तों की संगति का लाभः-

यदि हम अपने जीवन को सुख-समृद्धि वाला एवं सुरक्षित बनाना चाहते हैं तो हमें कुछ समय सत्संगति के लिए निकालना चाहिए। सत्संगति जीवन रक्षक भी है और उन्नति प्रदान करने वाली भी है। अच्छी संगति से व्यक्ति को जीवन में आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा भी मिलती है। बहुत कुछ सीखने को मिलता है।

कुछ लोग कहते हैं- क्या करें, फुर्सत ही नहीं

मिलती। जब व्यक्ति अनेक काम करता रहता है, तो उसके लिए समय ही समय है लेकिन सत्पुरुषों की संगति के लिए वह समय नहीं निकाल सकता। यह घोर आश्चर्य की बात है। इस कथन को मैं उचित या सत्य नहीं मान सकता। दिन-रात मिला कर चौबीस घण्टे बनते हैं। क्या इन चौबीस घण्टों में दो घड़ी यानि केवल अड़तालीस मिनट का टाइम भी उसे नहीं मिल सकता! व्यक्ति को नहीं मालूम कि ये दो घड़ी का समय उसके लिए कितना लाभकारी सिद्ध हो सकता है। एक कहानी के माध्यम से इसके मूल्य को अवश्य समझ जाएंगे।

एक बड़ा सेठ था। शहर में उसकी बड़ी इज्जत व प्रतिष्ठा थी। एक समय उस क्षेत्र में अकाल पड़ गया। किसान लोग जो केवल खेती पर निर्भर करते थे, उनके लिए भूखे मरने की नौबत आ गई। वे अपना खेत-घर-बार छोड़ कर रोजी-रोटी कमाने शहर चले गए। दो आदमी उस सेठ के पास पहुँच कर अपनी स्थिति बताने लगे और नौकरी पर रख लेने की प्रार्थना की। सेठ को उन पर दया आ गई और काम पर रख लिया। दो-तीन मास के बाद वर्षा का मौसम आया। अच्छी बारिश हुई। दोनों ने सेठ से गाँव जाने की आज्ञा मांगी। सेठ ने उनको उचित वेतन देकर घर भेज दिया। गांव वालों ने सेठ का कठिनाई में सहयोग करने लिए हार्दिक धन्यवाद किया। वे घर लौट गए।

दो चार वर्ष के बाद उस क्षेत्र में फिर से अकाल पड़ गया। इस बार वे दोनों आदमी लुटेरों के गिरोह में जा मिले। वे डाकू राह चलते यात्रियों को लूटते और प्राप्त धन को आपस में बाँट लेते। वही सेठ व्यापार के लिए किसी अन्य नगर में गया और व्यापार में उसने बहुत सारा धन कमाया। वह सेठ अपने नगर लौट रहा था। रास्ते में घना जंगल आता था। साथ लाए अंग-रक्षकों को सेठ ने पैसे के लालच में नगर के नजदीक आते ही वापस भेज दिया। नगर में इन्हें साथ ले जाऊँगा तो इन्हें खिलाना-पिलाना पड़ेगा और अधिक इनाम देना पड़ेगा, यह सोच अंग-रक्षकों को विदा करके आगे थोड़ी ही दूर निकला था। सेठ को डाकुओं ने घेर लिया और उसका सारा धन अपने कब्जे में ले लिया। लुटेरों में शामिल वे दो आदमी भी थे जो कुछ वर्ष पूर्व उसके यहाँ नौकरी करते रहे थे। सेठ ने उन्हें पहचान लिया और उन दोनों पुराने नौकरों ने भी लालाजी को अच्छी तरह पहचाना। दोनों ने लालाजी का नमक खाया था। कठिनाई के समय लालाजी उनके काम आया था। वे नमक हराम नहीं बनना चाहते थे। उन दोनों ने अपने साथी लुटेरों को समझाया कि सेठ का धन वापस कर दो, लेकिन वे डाकू लूट का धन वापिस नहीं करना चाहते थे। जब डाकू साथी सेठ का धन वापिस देने से इंकार करने लगे तब उन दोनों पूर्व के सेठ के नौकरों ने सभी डाकुओं को चेतावनी दी कि सेठ का धन वापस कर दो नहीं तो अच्छी बात नहीं होगी। उन्होंने लुटेरों का मुकाबला किया, वे दोनों मरने-मारने के लिए तैयार हो गए। स्थिति बिगड़ती देख कर डाकू सरदार ने नरमी दिखाई और सेठ का धन छोड़ कर वापस जंगल में चले गए। सेठ का सारा धन उन पुराने नौकरों ने पुनः रथ में रखा और लाला जी को घर सकुशल पहुँचाया। डाकुओं की संख्या साठ थी और उनमे से ५८ सेठ के धन को लूटना चाहते थे लेकिन केवल दो आदमियों ने सारी स्थिति बदल डाली और सेठ को लुटने से बचा लिया। सेठ का धन और जीवन दोनों की रक्षा हो गई।

यही बात आप और हम-सब पर लागू होती है। रात-दिन मिला कर साठ घड़ियों का समय होता है, इनमें से केवल दो घड़ी का सत्संग आपका जीवन बदल सकता है। अच्छे गुण अर्जित करके आप काफी लाभ कमा सकते हो।

एक अन्य बात मैं आपको कहना चाहता हूँ कि हम विशेष नेता, साधु-सन्तों, व्यक्तियों की विशेष अवसर पर भाषणों के द्वारा, मालाओं से स्वागत करते हुए आवभगत करते हैं। महान व्यक्तियों की समाधियों पर फूल-मालाएं चढ़ा कर, उनके गुणों के गीत गा-गाकर, उनकी याद में बड़े-बड़े स्मारक खड़े करके अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं। मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या यही उनका सच्चा स्वागत है? अरे दोस्तो, सच्चा-स्वागत तो अच्छे सन्तों के गुणों को अपनाने में है, उनके द्वारा बताए गए मार्ग पर चलने में है। 'अहिंसा परमो धर्म' का नारा सभी धर्म लगाते हैं। कहा जाता है कि ऐसा कोई धर्म नहीं, जो कहता हो हिंसा करो, शोषण करो, व्यर्थ का संघर्ष करो।

हम देख रहे हैं कि वर्तमान समय में इन बुराइयों की बाढ़-सी आ गई है। देश में सर्वत्र झगड़े, टंटे, सरकारी-गैर सरकारी सम्पत्ति को जलाना- सब जगह ऐसा ही नजर आता है। क्या देश की हानि अपनी हानि नहीं है? दुष्ट साधु, असंत, कुनेता हमारा गलत प्रयोग करके अपने लिए सुख का रास्ता तैयार करते हैं और हमारे जीवन से खिलवाड़ करते हैं। इस कठिन स्थिति को हम सबको बदलना है। धर्म को कहने भर से, परम्पराओं को पालने तक अपने को सीमित न रखते हुए, उसके आदर्शों पर जुटना ही आपके जीवन को सुख प्रदान करेगा। किसी को हानि पहुँचाना, धोखा देना, रिश्वत लेना, झूठा माप-तौल, छुआ-छूत, गलत आचरण, व्यभिचार आदि बातों का कभी भी धर्म समर्थन नहीं करता। बल्कि पुरजोर विरोध प्रकट करता हैं। केवल सत्संगति ही उक्त बुराइयों से हमारी रक्षा कर सकती है।

हर पुत्र श्रवण कुमार नही हो सकता

❑प्रो० शामलाल कौशल
(9416359045)

हमारे समाज में पुत्र प्राप्ति की इच्छा को सर्वोपरि माना जाता है। जब दुल्हन पहली बार ससुराल में प्रवेश करती है बुजुर्ग लोग यह आशीर्वाद देते हैं–दूधो नहाओ पूतों फलो। कोई भी बुजुर्ग बेटी प्राप्त होने का आशीर्वाद नहीं देता। बेटियों के मुकाबले में बेटों को प्राथमिकता दी जाती है। कहा जाता है कि बेटों से ही वंश चलता है। बेटे ही परिवार के उत्तराधिकारी होते हैं। बेटे ही काम धंधे और व्यवसाय को आगे बढ़ाते हैं। पुत्र प्राप्ति के लिए सौ–सौ यत्न किए जाते हैं, व्रत रखे जाते हैं। तीर्थ यात्रा की जाती है, दान पुण्य किए जाते हैं। बड़े–बड़े राजा महाराजा तथा अमीर लोग इस चिंता के चक्रव्यूह में फंसे हुए होते हैं कि उनकी मृत्यु के बाद उनका कामकाज कौन संभालेगा! लेकिन इन सब बातों के लिए पुत्र के होने की कोई जरूरत नहीं। मरने के बाद किसी को क्या पता कि उसका दाह संस्कार कौन कर रहा है! यह तो मन का वहम है कि अगर बेटा दाह संस्कार नहीं करेगा तो मृतक की आत्मा भटकती रहेगी। मरने के बाद क्या होता है यह तो हमारे कर्मों पर निर्भर होता है।

देखा जाए तो पैदा होने से लेकर अधिकतर बेटा अपने मां–बाप को दु:ख, तकलीफ, क्लेश तथा बदनामी ही देता है। मां–बाप उसको पालने पोसने, पढ़ाने, आर्थिक तौर पर आत्मनिर्भर बनाने, विवाह करने तथा फिर उसके बच्चों की देखभाल करने में अपना सारा जीवन बर्बाद कर देते हैं। और यह लड़का ही बड़ा होकर अपराध, मादक पदार्थों का प्रयोग, रिश्वतखोरी आदि करता है। माँ–बाप को सताता है, गाली गलौज करता है, मारपीट करता है, उनकी धन संपत्ति पर जबरन कब्जा कर लेता है और फिर अपमानित करके वृद्धाश्रम में धकेल देता है या घर से निकाल देता है। बेचारे मां–बाप को पुत्र प्राप्ति का यह फल मिलता है।

हर मां–बाप यह सोचकर पुत्र प्राप्ति की कामना करता है कि उनका बेटा बड़ा होकर उनकी श्रवण कुमार की तरह सेवा करेगा। लेकिन प्राय: ऐसा होता नहीं है। आजकल श्रवण कुमार जैसे बेटों की कल्पना करना सरासर बेवकूफी है। आजकल तो लड़कों के मुकाबले में लड़कियां अपने मां–बाप की ज्यादा पूछ पड़ताल और सेवा करती हैं। ससुराल में रहकर भी वह अपने मां बाप के बारे में सोचती रहती हैं। अब जमाना बदल गया है। लड़कियां लड़कों के मुकाबले में कहीं भी पीछे नहीं है। वह भी शिक्षक, प्रशासक, सैनिक, मंत्री, गवर्नर, प्रधानमंत्री तथा राष्ट्रपति बनती है। वह हृदय की कोमल होती हैं। लड़कों की तरह गाली–गलौच मारपीट, हिंसा का सहारा नहीं लेती। आजकल तो लड़कियों के द्वारा अपने माता–पिता का दाह संस्कार भी करने की प्रथा शुरू हो गई है। फिर ऐसी कौन सी मजबूरी है कि हम लड़कियों के मुकाबले में लड़कों को प्राप्त करने की गलत धारणा को अपने मन में स्थान दें। जब भारत एक तरक्की पसंद देश के तौर पर आगे बढ़ रहा है तो यहां भी लड़की और लड़के में भेद समाप्त कर देना चाहिए।

सबसे शक्तिशाली इंसान

एक वृद्ध पिता अपने IAS बेटे के चेंबर में जाकर उसके कंधे पर हाथ रख कर खड़ा हो गया और प्यार से अपने पुत्र से पूछा– 'इस दुनिया का सबसे शक्तिशाली इंसान कौन है?'

पुत्र ने हंसते हुए कहा– 'मेरे अलावा कौन हो सकता है पिताजी!'

पिता को इस जवाब की आशा नहीं थी, उसे विश्वास था कि उसका बेटा गर्व से कहेगा– पिताजी इस दुनिया के सबसे शक्तिशाली इंसान आप हैं, जिन्होंने मुझे इतना योग्य बनाया!

उनकी आँखे छलछला आई!

चेंबर के गेट को खोल कर बाहर निकलते हुए उन्होंने एक बार पीछे मुड़ कर पुन: बेटे से पूछा– एक बार फिर बताओ इस दुनिया का सब से शक्तिशाली इंसान कौन है?

पुत्र ने इस बार कहा–'पिताजी आप हैं, इस दुनिया के सब से शक्तिशाली इंसान!'

पिता सुनकर आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने कहा– 'अभी तो तुम अपने आप को इस दुनिया का सब से शक्तिशाली इंसान बता रहे थे, अब तुम मुझे बता रहे हो?'

पुत्र ने हंसते हुए उन्हें अपने सामने बिठाते हुए कहा– 'पिताजी, उस समय आप का हाथ मेरे कंधे पर था, जिस पुत्र के कंधे पर या सिर पर पिता का हाथ हो वह तो दुनिया का सबसे शक्तिशाली इंसान ही होगा ना!' बोलिए पिताजी!

पिता की आँखें भर आई। उन्होंने अपने पुत्र को कस कर अपने गले लगा लिया!

प्रस्तुति : संजय चुघ

धर्म चिन्तन

क्या होता है सनातन

❒रामफलसिंह आर्य (94182 77719)
C-18, तृतीय तल, आनन्द विहार, उत्तम नगर नई दिल्ली-५९

आग का गुण अथवा धर्म=जलाना है। वह कभी भी बदलता नहीं है। जल का शीतलता है दो और दो चार होते हैं। पानी के निर्माण के लिए २ भाग हाइड्रोजन और एक भाग ऑक्सीजन की आवश्यकता है। इसी व्यवस्था का नाम सनातन है।

सनातनमेनामाहुरुताद्य (अथर्व० १०/८/२३)

किसी शब्द को बोलते ही उसका अर्थ भी बुद्धिगम्य हो जाए और उस अर्थ पर आधारित समस्त व्यवहार का भी साक्षात् हो जाए= इसी को शब्दार्थ-संबंध कहा जाता है। उदाहरण के रूप में किसी ने 'आम' शब्द बोला और सुनने वाले के मन में आम का चित्र ही नहीं अपितु उसका स्वाद, उसकी गंध और उसकी विभिन्न प्रजातियां भी स्पष्ट होने लगती हैं। यही शब्द की सार्थकता और उपयोगिता है। जब किसी कार्य विशेष या अवस्था विशेष के लिए कोई शब्द निरंतर प्रयोग होने लगता है तो उसका वही अर्थ भी समाज में प्रचलित हो जाता है। उदाहरण के रूप में 'स्वर्गवासी' शब्द को ले लीजिए। वैसे तो स्वर्गवासी का अर्थ है- सुख विशेष की अवस्था में वास करने वाला व्यक्ति अर्थात् धन धान्य से पूरित पुत्र पौत्रादिकों सहित परिवार में- सौहार्दपूर्ण वातावरण में- स्वस्थ रहकर जीवन यापन करने वाला ही स्वर्ग अर्थात् सुख विशेष का उपभोग करने के कारण 'स्वर्गवासी' कहलाता है। परंतु प्रचलित अर्थ क्या हो गया? जो अपनी जीवनलीला समाप्त करके इस संसार से चला गया है वह 'स्वर्गवासी' है। अब यदि किसी जीवित और सुखी व्यक्ति को स्वर्गवासी कह देंगे तो वह बुरा मान जाएगा।

इस प्रकार के बहुत सारे शब्द हैं जिनका प्रचलन, जिनका विनियोग उनके वास्तविक अर्थ से बिल्कुल भिन्न हो गया है। अथर्ववेद के जिस मंत्र के अंश को हमने अपने विचार का बिंदु बनाया है, उसमें 'सनातन' शब्द पड़ा हुआ है। अब इस शब्द को ही देखकर जो लोग अपने को 'सनातनी' कहने लगे हैं, वे भी इस मंत्र का सहारा लेकर अपना वर्णन वेद से सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। यद्यपि जो प्रथाएं इनमें प्रचलित हैं, जो उनकी पूजा पद्धतियां, उनकी मान्यताएं हैं, जो परंपराएं उन्होंने प्रचलित कर रखी हैं; उनमें से कुछ भी सनातन नहीं हैं।

सनातन शब्द बड़ा गहन अर्थ लिए हुए है, जिसे सिद्ध करने के लिए लक्षण और प्रमाण की आवश्यकता पड़ेगी। शास्त्र कहता है- लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः।। अतः सबसे पहले तो यह देखना पड़ेगा कि सनातन धर्म किसे कहते हैं, अर्थात् उसके लक्षण क्या हैं? और जब लक्षणों का निश्चय हो जाए तो उनकी सिद्धि प्रमाणों से करिये- तब अर्थ सिद्ध हो सकेगा। यद्यपि जैसा हमने प्रथम ही लेख के प्रारंभ में स्पष्ट कर दिया है- अपने प्रचलित या रुढ़ि अर्थ के कारण जनसाधारण में सनातन या सनातनधर्मी शब्द आते ही एक मूर्तिपूजक, अवतारवादी, गंगा आदि नदियों को तीर्थ मानना- दिन विशेष पर व्रत, उपवास आदि करना, विभिन्न देवी-देवताओं को (ईश्वरस्थानी) मानना आदि कार्य करने वाले व्यक्ति का ही चित्र उभर कर आता है। परंतु ये इस शब्द के वास्तविक अर्थ नहीं हैं। तनिक वेद के इस पूरे मंत्र का अवलोकन कीजिये-

सनातनमेनामाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः।
अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः।। अथर्व० १०/८/२३

शब्दार्थः- (एनम्) इस परमात्मा को (सनातनम्) विद्वान् पुरुष सनातन कहते हैं। (उत्) और (अद्य) आज (पुनर्नवः) नित्य नया (स्यात्) हो जाता है। (अहोरात्रे) दिन और रात्रि दोनों (अन्यो अन्यस्य) एक दूसरे के दो रूपों में से (प्रजायेते) उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ : जो नित्य नया हो, कभी पुराना हो ही ना। जैसे रात और दिन का प्रवाह। दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन निरंतर आते रहते हैं। हर दिन एक दूसरे रूप का होता है। हर रात एक दूसरे रूप की होती है। ये दिन-रात नित्य नये रहते हैं।

अथर्ववेद के इस सूक्त में ४४ मंत्र हैं, जिनका देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय आत्मा अर्थात् ईश्वर है। उक्त मंत्र में न तो सनातन धर्म (प्रचलित) की बात आई है और न ही उनकी धारणाओं की। यहां तो स्पष्ट कहा गया है कि दिन-रात का प्रवाह नित्य और सनातन है। इसी प्रकार से अन्य वस्तुओं के भी नित्य गुण हैं, धर्म हैं और वे सनातन हैं, कभी भी बदलते नहीं है। सदा से हैं और सदा ही रहेंगे। आग का गुण अथवा धर्म=जलाना है। वह कभी भी बदलता

नहीं है। जल का शीतलता है। दो और दो चार होते हैं। पानी के निर्माण के लिए २ भाग हाइड्रोजन और एक भाग ऑक्सीजन की आवश्यकता है। इसी व्यवस्था का नाम सनातन है।

अब यदि आप किसी पौराणिक व्यक्ति से यह प्रश्न पूछ लेंगे कि भाई आपकी यह मूर्ति-पूजा कब से है, तो वह यही उत्तर देगा कि सनातन काल से। अर्थात् सृष्टि के प्रारंभ से ही है। अब इस उत्तर को उक्त लक्षणों पर घटा कर देख लीजिए। सृष्टि को उत्पन्न हुए तो १ अरब ९६ करोड़ वर्ष हो चुके हैं और मूर्तिपूजा चली है मध्य युग में, जिसके जन्मदाता जैनी लोग हैं; तो फिर लक्षण पर आते ही यह विचार खंडित हो गया।

अच्छा राम-राम क्यों कहते हो? नमस्ते क्यों नहीं कहते? **उत्तर=** राम-राम तो सदा से चला आया और नमस्ते चलाया आर्यों ने।

प्रश्न : तो राम के उत्पन्न होने से पूर्व उनके पिता, दादा-परदादा आदि भी राम-राम कहते थे क्या?

उत्तर : हमें इसका नहीं पता, परंतु हमारे दादा दादी तो कहते आए हैं।

प्रश्न : तो आपके दादा जी या दादी जी कितने पुराने हैं? क्या वे दो अरब वर्ष पूर्व थे? नहीं ना! तो फिर राम-राम सनातन कैसे हुआ? आप उन्हें प्राचीन तो कह सकते हो, सनातन नहीं कह सकते। 'नमस्ते' सनातन था, है और रहेगा। वह आप आर्यसमाजियों का मानते हो! यह तो उचित नहीं। अन्यायपूर्ण और अविद्यापूर्ण बात है। नमस्ते शब्द आर्यों ने थोड़े ही बनाया है। यह तो स्वयं ईश्वर ने कहा है, वेद में कहा है। इसी प्रकार 'सनातन धर्म' जिसे आप कहते हैं, वह कब सनातन बना? सनातन धर्म सभा तो १९०२ में बनी। श्री मदनमोहन मालवीय जी ने इसका गठन किया। सनातन के लक्षणों पर ये सभी अनुत्तीर्ण हो गये।

याद रखिए सनातन बनाया नहीं जाता है वह तो स्वभाव से होता है। जल का स्वभाव बहना है। आग को किसी ने गर्म बनाया है क्या? नहीं, नहीं। यह तो स्वभाव से ही है। जो बनाया जाता है, वह कभी न कभी नया होता ही है। बनने से पूर्व विद्यमान न होने के कारण से। अनेकेश्वरवाद कब चला? अवतारवाद कब चला? यदि कोई भी विचारशील व्यक्ति इनका अन्वेषण करेगा तो वह २ या अढाई हजार वर्ष से आगे न जा सकेगा।

यहां यह शंका उठ सकती है कि वैदिक परंपराएं, मान्यताएं भी तो कभी न कभी चली ही हैं! फिर भी सनातन कैसे हो गईं? तो इसका उत्तर यह है कि प्रथम तो वेद का ज्ञान ईश्वर द्वारा सृष्टि के आदि में ही दिया गया। इससे पूर्व कोई अन्य विचारधारा या मान्यता थी ही नहीं। अतः आदि होने से सनातन है। और दूसरे वेद नित्य है। वह कभी बदलता ही नहीं। जैसा इस सृष्टि में है वैसा ही इससे पिछली सृष्टि में था और वैसा ही इससे आगे आने वाली सभी सृष्टियों में रहेगा। उसमें रत्ती भर भी परिवर्तन या परिवर्धन न हो सकेगा। जो बदल गया, परिवर्तित हो गया वह सनातन नहीं है। यद्यपि मनुष्यों के आचार विचार आदि बदलते रहते हैं, यह वैदिक ज्ञान में परिवर्तन के कारण नहीं है,

(शेष पृष्ठ ३३ पर)

यहाँ पर हम आर्यसमाज के तपोधन आचार्यप्रवर श्री पंडित चमूपति जी के लेख को देने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहे हैं। लेख भी क्या है, उनके एक भाषण का अंश है जो उन्होंने सन १९२३ में लाहौर में अहमदिया संप्रदाय द्वारा आयोजित सर्वधर्म सम्मेलन में आर्यसमाज का प्रतिनिधित्व करते हुए दिया था। आप भी उसका रसास्वादन कीजिये।-

'यजुर्वेद का कथन है- विश्वे अमृतस्य पुत्राः।। सब परमात्मा के पुत्र हैं। इसी प्रकार सभी का धर्म भी एक ही है, जो मानव मात्र के लिए, अपने एक ही परमात्मा के प्रति प्रवृत्तिगत प्राकृतिक संबंध है। विभिन्न देशों की पृथक् पृथक् जलवायु, वनस्पति, प्रकृति तथा जड़ चेतन आदि की परिस्थितियों के साथ उनके रीति-रिवाज, कार्यप्रणाली और कर्मकांड भी भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं। वेद में कहा है- नाना ध र्माणं पृथिवि यथौकसम्।। (अथर्व०) अर्थात् स्थान विशेष के अनुरूप धर्म के अनेकधा रंग रूप हैं, परंतु जिन मान्यताओं के अंतर्गत उन रीति रिवाजों तथा कर्मकांडों को निर्मित किया जाता है, अथवा उन्हें निर्मित किया जाना चाहिए- वे एक हैं। यथा- सबको आर्य बनाओ। कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।। इस प्रकार की मान्यताओं को मैं धर्म कहता हूं। परम पावन वेद की कल्याणी वाणी में इन्हीं मान्यताओं की व्याख्या की गई है। स्थान विशेष की विशेषताओं की दृष्टि से प्रत्येक देश के निवासियों के अपने-अपने कर्मकांड हैं। ये कार्य पद्धतियां युगानुरूप परिवर्तित हो जाया करती हैं, किंतु वे चिरंतन मान्यताएं अथवा शाश्वत सिद्धांत, जिनका अनुसरण देश काल के अनुसार कर्मकांड अथवा रीति रिवाज किया करते हैं; कभी परिवर्तित नहीं होते। वह विधान अनादि काल से एक है और अनंत काल तक एक रहेगा।' (धर्म का प्रयोजन)

माननीय सुधी पाठकगण! धर्म की, शाश्वत नियमों की और सनातनता की इससे अधिक विस्तृत, उदार और सटीक व्याख्या आपको संभवतः कहीं और देखने को नहीं मिल सकती।

शोधों के आधार पर यह बात स्पष्ट हो गई है कि यज्ञों का अनुष्ठान धार्मिक परिवेश तक ही सीमित नहीं है, बल्कि मनुष्य, वनस्पति और पशुओं के सही विकास व पर्यावरण संरक्षण के लिए भी यज्ञ की बड़ी उपयोगिता है। अतः हम सबका यह पुनीत दायित्व है कि इस क्रिया का विधिविधान से अधिक से अधिक प्रयोग करें, ताकि हर प्रकार का पर्यावरण हमारे अनुकूल बन सके।

यज्ञ का पर्यावरण पर प्रभाव

❐डॉ० सुरेन्द्र नाथ सेमल्टी

एक ओर जहाँ मनुष्य ने अनेक भौतिक साधनों का उपयोग कर अपना जीवन अत्यधिक सुखमय बनाने में सफलता प्राप्त की है, वहीं दूसरी ओर आए दिन वह पर्यावरण प्रदूषण के कारण अपने को असुरक्षित समझता जा रहा है, जो आने वाले समय में और भी भयावह रूप धारण कर प्राणिमात्र ही नहीं अपितु हर एक पदार्थ के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकता है। पर्यावरण को प्रदूषित करने में जहाँ कुछ कारण प्राकृतिक हैं, वहीं अधिकांश कारण मानवकृत भी हैं, जो अधिक हानिकारक हैं। वन सम्पदा का निर्दयता से दोहन, कल कारखानों एवं वाहनों से निकलने वाला धुआं, गैस रिसाव, कुत्सित विचार एवं भावनाएं जैसे अनेक कारण पर्यावरण में असन्तुलन उत्पन्न कर रहे हैं। इस प्रतिकूल परिवेश के कारण अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति हो रही है, समुचित शारीरिक, मानसिक विकास नहीं हो रहा है, अन्न उत्पादन में कमी, वर्षा का अभाव, बदलती हुई विषम भौगोलिक परिस्थिति तथा विक्षिप्त मानसिक स्थिति जैसी अनेक समस्याएं पैदा हो रही हैं।

अब प्रश्न इस बात का है कि इन समस्याओं से कैसे बचा जाए? इस क्षेत्र में अनेक आविष्कार किए जा चुके हैं तथा नये-नये शोध किये जा रहे हैं। यज्ञ पर्यावरण को अनुकूल बनाने का सबसे प्राचीन आविष्कार है। यद्यपि अधिकांश लोग अभी तक इस क्रिया को मात्र कर्मकाण्ड मानकर चलते हैं, लेकिन हमारे वे ऋषि-मुनि जिन्होंने अपने जीवन काल में दैनिक क्रिया से लेकर बड़े-बड़े उद्देश्यों की पूर्ति हेतु यज्ञ का विधान अनिवार्य माना है, उन्हें पर्यावरण पर इसके अनुकूल प्रभाव की भी जानकारी रही होगी।

यज्ञ में अग्नि तत्व की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, इसके उपयोग से मनुष्य अभीष्ट फल को प्राप्त करता है, इसी कारण वेदों में उसकी स्तुति की गयी है-

गर्भो अस्योषधीनां, गर्भो वनस्पतिनाम्।
गर्भो विश्वस्य भूतस्य- अग्ने गर्भो अपामसि।।

संसार की समस्त औषधियों, वनस्पतियों एवं प्राणियों के गर्भ में निवास करने वाली जो अग्नि है, पदार्थों से पृथक रहकर भी अपना विशेष प्रभाव दिखाती है और जब कोई पदार्थ उसमें आहुत किया जाता है तो वह पौष्टिक एवं स्थूल से सूक्ष्म बनकर उनके गुणों में कई गुना वृद्धि हो जाती है, जिससे अनेक रोगों के कीटाणु तो नष्ट होते ही हैं साथ ही आकाशीय वातावरण पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने सिद्ध किया कि यज्ञ के समय अग्नि में जो आहुतियाँ दी जाती हैं, उनका दो प्रकार से प्रभाव पड़ता है-एक भाग से आकाश, वायु, पृथ्वी एवं जल शुद्ध होता है तथा दूसरा भाग मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर उसे प्रभावित करता है।

उद्देश्य भेद से यज्ञ के अनेक प्रभाव होते हैं। यज्ञ के भेदों में एक भेद अग्निहोत्र होता है, उसके करने से मनुष्यों एवं पशुओं के रोगों का नाश होता है, सुस्वास्थ्य वृद्धि करने में सहायक होता है, वायुमण्डल में फैले हुए दुर्विचार निष्क्रिय होते हैं। साथ ही वनस्पतियों की विकृत प्रजातियों का संशोधन, फसल की पैदावार में वृद्धि, वृक्षों के बढ़ने में सहायक है तथा फल-फूलों को नुकसान पहुंचाने वाले कीटाणुओं का भी नाश होता है, जैसा कि वेदों में भी

कहा गया है–

गर्भो यो अपां, गर्भो वनानां, गर्भश्च स्थातां गर्भश्च स्थाम्।
अद्रौ चिदस्मा अंतुर्दराणे, विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः।।

अर्थात् हे अग्नि! जहां एक ओर सभी तत्वों के गर्भ में निहित होने के कारण तुम्हारा व्यापक फैलाव है, वहीं दूसरी ओर वृक्षों और लताओं का बढ़ना, फैलना तुम्हारे ही कारण होता है।

जहां एक ओर हमारे प्राचीन ग्रंथों एवं क्रियाओं में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से यज्ञ के पर्यावरण पर प्रभाव के संकेत मिलते हैं, वहीं दूसरी ओर विश्व में अनेक व्यक्ति एवं संस्थाएं इस ओर शोध कर नई–नई जानकारियां दे रहे हैं। मात्र अग्निहोत्र यज्ञ पर ही अनेक अन्वेषण किये जा रहे हैं, जिसके परिणाम अत्यधिक चौंकाने वाले हैं। वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि पृथ्वी पर जो जीवनदायिनी, वायुमण्डल की पतली परत है, वह अनेक प्रकार के प्रदूषणों एवं प्राकृतिक साधनों के अंधाधुंध उपयोग करने से कमजोर और प्रदूषित होती जा रही है, जिसके परिणामस्वरूप मन तनावग्रस्त और शरीर अनेक प्रकार के रोगों से ग्रसित होने लगता है। यदि अग्निहोत्र यज्ञ किया जाये तो मनुष्य इन संकटों से छुटकारा प्राप्त कर सकता है।

फ्रांस के रासायनिक विशेषज्ञ डॉ० त्रिले ने अपने अनुसंधान द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि अग्नि में जब काष्ठ जलाया जाता है, तब उससे फार्मिक आल्डीसाइड नाम की एक गैस उत्पन्न होती है, जिसके प्रभाव से सभी प्रकार के हानिकारक कीटाणु नष्ट होकर पर्यावरण शुद्ध होता है। साथ ही डॉ० त्रिले ने यह भी खोज की है कि हवन में घी, दूध, शक्कर, किसमिस, मुनक्का, छुहारा आदि पदार्थों की आहुतियां देने से भी अनेक रोगों से बचा जा सकता है। जहाँ एक ओर यज्ञ के धुंए के प्रभाव से टाइफाइड, मलेरिया, बवासीर, क्षयरोग, चर्मरोग, दांत, आंखों के रोग जैसी अनेक व्याधियों की प्राकृतिक चिकित्सा होती है, वहीं दूसरी ओर भौगोलिक परिस्थितियों को भी यज्ञ द्वारा बहुत कुछ अपने अनुकूल बनाया जा सकता है और इसे अनुकूल बनाने में अग्निहोत्र यज्ञ की अहम भूमिका होती है। इसी कारण अमेरिका में अग्निहोत्र विवि की स्थापना की गयी है, जहाँ अनेक परीक्षण किए जा रहे हैं। इस विवि के एक शोध द्वारा सिद्ध किया गया है कि यज्ञ का धुंआं आठ किमी तक अपना प्रभाव दिखाता है, जिससे कीटनाशक दवाइयों के छिड़काव के समान फसलों पर लगने वाली बीमारियाँ नष्ट होती हैं तथा वायु प्रदूषण समाप्त होकर पैदावार के लिए उचित वातावरण तैयार होता है।

अन्वेषण से यह भी सिद्ध हो चुका है कि यज्ञ से वायुमण्डल में पौष्टिक तत्वों की वृद्धि होती है और जहरीली गैसों का दुष्प्रभाव समाप्त हो जाता है। आकाश में वर्षा करने वाले बादल उमड़ पड़ते हैं, जो पर्याप्त वर्षा कर धरती में हरियाली बिखेर देते हैं। वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि यज्ञ के द्वारा वायु की गति ऊर्ध्व होती है। ऊर्ध्व गति वाली वायु ही वर्षा करने में सक्षम होती है। जब यज्ञ में घी की आहुतियाँ दी जाती हैं तो घी के कण सूक्ष्म होकर वायु के माध्यम से बादलों के संपर्क में जाकर स्वयं तो जमते ही हैं साथ ही बादलों को भी जमाकर वर्षा करने योग्य बना देते हैं। उक्त अन्वेषणों की पुष्टि जर्मनी की एक प्रयोगशाला में वैज्ञानिकों द्वारा किए गए प्रयोगों से भी होती है। उन्होंने सिद्ध किया है कि मनुष्य के शरीर को स्वस्थ रखने, वायुमण्डल को प्रदूषण रहित रखने तथा उर्वरकता की दृष्टि से यज्ञ का धुआं और राख अत्यधिक उपयोगी होती है। यदि यों कहा जाये कि यज्ञ से हर प्रकार का पर्यावरणीय स्वास्थ्य बढ़ता है तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी।

शोधों के आधार पर यह बात स्पष्ट हो गई है कि यज्ञों का अनुष्ठान करना धार्मिक परिवेश तक ही सीमित नहीं है, बल्कि मनुष्य, पशु और वनस्पतियों के सही विकास एवं पर्यावरण संरक्षण के लिए भी यज्ञ की बड़ी उपयोगिता है। अतः हम सबका यह पुनीत दायित्व है कि इस क्रिया का विधि–विधान से अधिक से अधिक प्रयोग करें, ताकि हर प्रकार का पर्यावरण हमारे अनुकूल बन सके।

(नवोत्थान लेख सेवा हिन्दुस्थान समाचार)

परहेज न करने के फायदे

एक खांसी का रोगी धूम्रपान करने का आदी था और खटाई खाना उसका विशेष शौक था। वह डाक्टरों के पास जाता। डाक्टर दवाई देते और परहेज करने की बात कहते, लेकिन उसे यह मंजूर नहीं था। आखिर वह एक समझदार वैद्य के पास गया। उन्होंने कहा मेरी दवाई खाओ तुम्हें परहेज करने की भी जरूरत नहीं है। रोगी बड़ा खुश हुआ। बोला–क्या बिना परहेज किये ही दवाई से लाभ हो जायेगा। वैद्य जी ने कहा–एक नहीं, तीन–तीन लाभ होंगे। घर में कभी चोरी नहीं होगी, कुत्ता नहीं काटेगा और बुढ़ापा नहीं आयेगा। रोगी चकित हुआ। पूछा–यह कैसे? वैद्य जी ने बताया–अगर परहेज नहीं करोगे तो खांसी कभी ठीक नहीं होगी। रात में खांसते रहोगे तो चोर आयेगा नहीं, इसलिये चोरी कैसे होगी। खांसते–खांसते इतने कमजोर हो जाओगे कि लाठी के सहारे की जरूरत पड़ेगी, इसलिये कुत्ता कैसे काटेगा। बीमारी इतनी बढ़ जायेगी कि भरी जवानी में ही मर जाओगे, इसलिये बुढ़ापा भी नहीं आयेगा।

आज भी प्रासंगिक हैं

इतिहास

सम्राट् ललितादित्य

❑**जवाहरलाल कौल** (लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं।)

भारत और विशेषकर जम्मू कश्मीर के इतिहास में ललितादित्य का नाम उनकी शानदार विजय-यात्राओं के कारण प्रसिद्ध रहा है। कुछ लोग मार्तंड मंदिर के कारण भी उन्हें स्मरण करते हैं। लेकिन विकासमान भारत के संदर्भ में अगर वे किसी बात के लिए प्रासंगिक हैं तो उनकी विदेश नीति और अपनी समरनैतिक सूझबूझ के कारण ही हैं। यह हमारा दुर्भाग्य रहा है कि हम यह प्रायः भूलते रहे हैं कि इस विश्व में केवल हम ही नहीं रहते, और अनेक जातियां और उनके देश भी हैं जिनकी अपनी ही प्राथमिताएं होतीं हैं और जो हमारे प्रति उतने ही मित्रवत् नहीं होंगे जितने हम उनके प्रति हैं। दूसरों की सम्पति, उनका धन, उनकी भूमि छीनने का मानव स्वभाव उसे पशु अवस्था से प्राप्त हुआ है। सभ्यता के विकास की लंबी यात्रा में कुछ ही देश सभ्यता के ऊंचे स्तर तक पहुंच जाते हैं, अधिसंख्य देश तो पाशविक संस्कारों से ही लिप्त रहते हैं और उनके लिए दूसरों की उपलब्धियों को नष्ट करना ही उपलब्धि होती है। हम किसी को नष्ट नहीं करेंगे, लेकिन इस से यह आश्वासन नहीं मिलता कि वे भी हमारे प्रति वैसा ही व्यवहार करेंगे। अपने आसपास के बारे में जानकारी रखने, उन का आकलन करने में अरुचि ने हमारे राजाओं में अपने आंगन से बाहर न झांकने का स्वभाव बनाया है और वह आजतक भी जारी है। इसका परिणाम यह निकला कि शत्रु को कम संख्या और कम शक्ति के बावजूद हमें परास्त करने और आहत करने का अवसर मिलता रहा है।

आधुनिक युग में केवल एक ही राजा ने समरनैतिक समझ का परिचय दिया और पंजाब और देश को बर्बर आक्रमणकारियों से एक शताब्दी तक सुरक्षित रखा। लेकिन देश की स्वतंत्रता के साथ ही हमने फिर वही राह पकड़ ली जिसमें नींद तब खुलती है, जब दुश्मन दरवाजा खटखटाने लगे। महाराजा रणजीत सिंह को पता था कि देश पर शत्रु कहां से आता है और क्यों आता है। उन्होंने तभी कदम उठाया जब जिरगे जुटने लगे। उन्हें ज्ञात था कि जिरगों के जुटने का क्या अर्थ होता है। समय की मांग थी कि पहल की जाए। हरिसिंह नलवा को आदेश हुआ कि जिरगों को तितर बितर कर दो। जिरगे बिखर गए और हिंदुस्तान पर हमला करने के मन्सूबे भी बिखर गए। वे तब तक बिखरे ही रहे जब तक स्वतंत्र भारत की कमजोर रग को उन्होंने पहचान न लिया और १९४७ में कश्मीर पर चढाई का मौका न मिल गया।

१९वीं सदी के राजा रणजीत सिंह से हजार साल पहले भारत के उत्तरी राज्य कश्मीर के राजा ललितादित्य मुक्तापीड ने समरनीति का ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया था। यदि उसका अनुपालन किया गया होता तो भारत का इतिहास ही कुछ भिन्न होता। ललितादित्य आठवीं शती के आरंभ में कश्मीर के राजा थे। तब का कश्मीर आज के जम्मू-कश्मीर से काफी बड़ा था। राजा ललितादित्य की दृष्टि बहुत व्यापक थी। वे मानते थे कि भारतवर्ष की सुरक्षा उसमें रहने वाले राज्यों की सुरक्षा का आश्वासन है। इसलिए कश्मीर को विदेशी आक्रांताओं से बचाने के लिए भारत की सीमाओं का बचाव आवश्यक है।

वे जानते थे कि इन सीमाओं को नहीं बचाया गया तो कोई भी राज्य नहीं बच सकता है, भले ही उसके पास कितनी ही बड़ी सेना क्यों न हो। उस काल में चीन में तान वंश का राज्य था। तब चीन में देश विदेश की घटनाओं के बारे में वृत्तांत लिखने की प्रथा थी। उनमें ललितादित्य के बारे में लिखा मिलता है कि कश्मीर के राजा के राजदूत का कहना है कि उन्होंने आक्रमणकारियों के सभी द्वार बंद कर दिए हैं। ये सारे दरवाजे देश की सीमाओं पर ही स्थित थे।

उन्हें चार दिशाओं से देश को विदेशी और विजातीय आक्रमणों का खतरा दिखाई देता था। उत्तर पश्चिम में आज के अफगानिस्तान के मार्ग से

अरब, तुर्क, मध्य एशियाई जातियां लगातार भारत में प्रवेश करने का प्रयास कर रहीं थीं। यह दौर इस्लाम के फैलाव का दौर था। गांधार के आसपास तब हिंदू शाही राज्यवंशों का ही शासन था। लेकिन ये सभी राज्य ललितादित्य के अधीन थे। ललितादित्य इस बात से अनभिज्ञ नहीं थे कि मजहबी उन्माद से प्रेरित आक्रमणकारी लगातार शक्ति अर्जित कर रहे हैं और कमजोर शाही वंशों पर कभी भी हावी हो सकते हैं। अरबों का दबाव दक्षिण और पश्चिम में अरब सागर से भी बढ़ रहा था। गांधार में हिंदू शाही राज्यों को सुरक्षित रखने के लिए राजा ललितादित्य ने हर चार-पांच वर्ष में गांधार में सेना सहित शक्ति प्रदर्शन करने का नियम बना लिया था ताकि शत्रु को इस बात का आभास हो जाए कि शाही वंशों को ललितादित्य का समर्थन प्राप्त है। अरब में उठने वाला तूफान ललितादित्य के शासनकाल में पश्चिमी सीमांत को कई बार प्रयास करने पर भी लांघ नहीं पाया। अरब सागर के रास्ते अरब सिंध पर अधिकार जमाना चाहते थे। बगदाद के खलीफा को राजा दाहिर के रूप में एक लक्ष्य मिल गया था। राजा दाहिर को यह अनुमान ही नहीं था कि वे केवल किसी लड़ाकू सरदार का ही नहीं, इस्लामी आंदोलन के मुखिया का सामना कर रहे थे। मोहम्मद बिन कासिम तो केवल उस का एक सेनापति भर था। बिना तैयारी के ही राजा दाहिर जंग में कूद पड़े। सिंध के अरबी में लिखे इतिहास के अनुसार यह भूल तो दाहिर के जंग में हारने के पश्चात हुई कि उसे राजा ललितादित्य को समय रहते सूचित करना चाहिए था। लेकिन दाहिर की इस आत्ममुग्ध होने की भूल से ललितादित्य सचेत हो गए।

उसके पश्चात् ललितादित्य ने पंजाब में अपनी सुरक्षा बढ़ा दी। कासिम के पश्चात् सिंध के अरब गवर्नर जुनैद ने अपने राज्य को पंजाब की ओर बढ़ाने की कोशिश अवश्य की लेकिन उसे ललितादित्य की सेनाओं का सामना करना पड़ा। ललितादित्य के रहते अरब अपना अधिकार क्षेत्र सिंध के आगे नहीं ले जा सके।

कश्मीर की एक पुरानी समस्या रही है- उसका उत्तरी सीमांत, जिसमें कई जनजातियां समय समय पर उपद्रव पर उतर आती रही हैं। इनमें खस, काम्बोज, दरद आदि जातियां महत्वपूर्ण रही हैं। इनको कभी तिब्बत उकसाता रहा है तो कभी चीन। कश्मीर के लिए दरदों का सांस्कृतिक महत्व सबसे अधिक रहा है। ललितादित्य ने बार-बार सेना लेकर पहाड़ों में युद्ध लड़ने के बदले सारे क्षेत्र को एक व्यापक संधि में बांधना उचित समझा। इतिहास में पहली बार किसी भारतीय राज्य और चीन के बीच एक समरनैतिक समझौता हुआ। यह समझौता दोनों पक्षों के परस्पर हितों के आधार पर किया गया था। चीन का तान वंश कमजोर पड़ गया था, लेकिन तिब्बत हावी हो रहा था। तिब्बत ने चीन के कई क्षेत्रों को कब्जा कर लिया था। ललितादित्य ने चीन के साथ समझौता कर लिया क्योंकि तिब्बत दरदों को कश्मीर के विरुद्ध उकसा रहा था। ललितादित्य ने स्वयं तो तिब्बत के क्षेत्र पर चढ़ाई कर ली लेकिन दरद क्षेत्र में चीनी सेना को तैनात किया गया। उन दिनों दरद क्षेत्र कश्मीर घाटी में वुल्लर झील के किनारे से आरम्भ होता था। चीनी सैनिक शिविर वुल्लर के किनारे पर ही लगा था। इस प्रकार सम्राट ललितादित्य ने चीन के साथ मिल कर देश तथा अपने राज्य के सीमाओं की रक्षा की।

ललितादित्य की एक असाधारण विशेषता थी कि वे मानते थे कि हर विजित क्षेत्र के साथ सांस्कृतिक आदान-प्रदान किया जाना चाहिए। चाहे दरद देश हो या केरल प्रदेश उन्होंने कश्मीरी विद्वानों को वहां स्थापित किया या वहां के विद्वानों को अपने राज्य में लाए। उन के प्रशासन में कई देशों के अधिकारी थे। उनकी अखिल भारतीय सोच ही उन्हें असाधारण व्यक्तित्व प्रदान करती है।

(भारतीय धरोहर से साभार)

मौत का सौदागर

एक व्यक्ति सुबह अखबार पढ़ रहा था। उसकी नजर एक 'शोक-सन्देश' पर पड़ी। वह दंग रह गया, क्योंकि मरने वाले की जगह उसी का नाम लिखा हुआ था। वह चकित तथा भयभीत हो गया। अखबार ने उसके भाई लुडविग की जगह खुद उसके मरने की खबर प्रकाशित कर दी थी। खैर, उसने किसी तरह खुद को संभाला और सोचा- देखते हैं- लोग उसकी मौत पर क्या कहते हैं। उसने पढ़ना शुरू किया, लिखा था- 'मौत का सौदागर मर चुका है' यह और बड़ा आघात था। 'क्या मरने के बाद लोग उसे इसी तरह याद करेंगे?' यह दिन उसकी जिन्दगी का टर्निंग पांइंट बन गया और उसी दिन से डायनामाइट का यह अविष्कारक विश्व शांति और समाज कल्याण के लिए काम करने लगा। मरने से पहले उसने अपनी अकूत संपत्ति उन लोगों को पुरस्कार देने के लिए दान दे दी जो विज्ञान और समाज सेवा के क्षेत्र में उत्कृष्ट काम करते हैं। उस व्यक्ति का नाम था- ऐल्फ्रेड बर्नार्ड नोबेल। आज उन्हीं के नाम पर हर वर्ष 'नोबेल प्राइज' दिए जाते हैं। आज कोई उन्हें 'मौत के सौदागर' के रूप में नहीं याद करता बल्कि उन्हें एक वैज्ञानिक और समाजसेवी के रूप में याद किया जाता है।

एक क्षण भी जीवन की दिशो बदल सकता है, ये हमें सोचना है कि हम क्या करना चाहते हैं और किस तरह याद किये जाना चाहते हैं?

महाम त्यु जय मंत्र में खरबूजे की उपमा का रहस्य

❒प्रियांशु सेठ वाराणसी

ब्राह्मण ग्रन्थों में 'असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय।।' एक सार्वभौम, सार्वजनीन प्रार्थना है। जीवन-संघर्ष में पड़े व्यक्ति के सामने सदा से दो पक्ष खुले रहे हैं- असत्-सत्, तमस्-ज्योति, मृत्यु-अमृत। विवेकशील व्यक्ति पहले को छोड़ दूसरे को अपनाता है। मन्दमति व्यक्ति ही सत्य की तुलना में असत्य का, ज्योति की तुलना में अन्धकार का और अमृत की तुलना में मृत्यु का वरण करेगा। इस उपर्युक्त उपदेश का सार उसका अन्तिम चरण 'मृत्योर्मा अमृतं गमय' ही है। इसी तथ्य को ईश्वरीय वाणी वेद में 'मृत्योर्मुक्षीय मा अमृतात्' ऐसा कहा है- 'हे प्रभो! मुझे मृत्यु-बन्धन से छुड़ा, अमृतत्व से नहीं। यह टेक जिस मन्त्र की है, उसे वैदिक वाङ्मय में 'महामृत्युञ्जय' नाम दिया गया है। पूरा मन्त्र इस प्रकार है-

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्म त्योर्मुक्षीय मा म तात्।।
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः।। -यजु० ३/६०

महर्षि दयानन्दजी कृत भाष्य- इस मन्त्र में उपमालंकार है। मनुष्य लोग ईश्वर को छोड़कर किसी का पूजन न करें, क्योंकि वेद से अविहित और दुःखरूप फल होने से परमात्मा से भिन्न दूसरे किसी भी उपासना न करनी चाहिए। जैसे खर्बूजा फल लता में लगा हुआ अपने आप पक कर समय के अनुसार लता से छूट कर सुन्दर स्वादिष्ट हो जाता है, वैसे ही हम लोग पूर्ण आयु को भोग कर शरीर को छोड़ के मुक्ति को प्राप्त होवें, कभी मोक्ष की प्राप्ति के लिए अनुष्ठान वा परलोक की इच्छा से अलग न होवें और न कभी नास्तिक पक्ष को लेकर ईश्वर का अनादर भी करें। जैसे व्यवहार के सुखों का लिए अन्न, जल आदि की इच्छा करते हैं, वैसे ही हम लोग ईश्वर, वेद, वेदोक्तधर्म और मुक्ति होने के लिए निरन्तर श्रद्धा करें।'

यहाँ एक प्रश्न मन में उठना स्वाभाविक है कि इस मन्त्र में उपमा अलंकार ही क्यों विद्यमान है? इसका बहुत ही सरल उत्तर यह है कि उपमा सादृश्य-मूलक अलंकारों का बीजभूत है, उपजीव्य है, मेरुदण्ड है, प्राण-स्पंदन है। उपमा भिन्न स्तरीय वस्तुओं को एक स्नेह सूत्र में बांधती है, वह दृश्य में सादृश्य का अन्वेषण करती है, दो पदार्थों को बराबर-बराबर तोल (उपमा) देने का यत्न करती है। भावनाओं के अयत्नज आप्लावन के साथ उपमा जिस सहजता से वह निकलती है, वैसा अन्य अलंकार में नहीं। यही कारण है कि वेद-मन्त्रों में उपमा अलंकार की ही अधिकता दिखलाई पड़ती है।

मैं प्रायः सोचा करता था कि जब सृष्टि पर खर्बूजे की तुलना में एक-से-एक उत्तम फल विद्यमान हैं तो ईश्वर ने खर्बूजे को ही उपमा क्यों बनाया? उर्वारुकमिव बन्धनात् ही क्यों? आम्रमिव, नारिकेलमिव, कदलीमिव, द्राक्षमिव क्यों नहीं? इनमें से किसी एक फल को उपमा बनाया होता तो क्या ही अच्छा होता! विचारने पर ज्ञात हुआ कि मनुष्य को इस बात का बोध कराने के लिए कि वह अपने जीवन को कैसे सफल करे, इससे बढ़िया उपमा दी ही नहीं जा सकती थी। वास्तव में इस वेद-मन्त्र में खर्बूजे को ही उपमा देना परमेश्वर का चमत्कार है। मनुष्य मृत्यु के बन्धन से तभी छूट सकता है जब तक वह पक न जाए और पकने के लिए जुड़ना आवश्यक है। मनुष्य के जीवन-फल के परिपक्व होने की पहचान खर्बूजे फल से जानी जा सकती है क्योंकि यही एक ऐसा फल है जो पकने के बाद डाल से स्वतः पृथक् हो जाता है। कच्चा फल तो किसी के उपयोग का नहीं रहता। वह सर्वथा नीरस, निर्गन्ध, नीरूप, स्वयं सड़ जाये, सम्पर्क में आने वालों को भी सड़ा दे, ऐसा रहता है। मनुष्य का कच्ची अवस्था में छूट जाना भी ऐसा ही है जैसे फल का कच्चा टूट जाना। हे मुमुक्षो! आओ खर्बूजे फल के पकने की पहचान कर उससे अपने जीवन की तुलना करें। जब उस पहचान-कसौटी पर हम अपने को कसकर खरा बना लेंगे तो हमारी परिपक्वता में कोई सन्देह नहीं रहेगा अर्थात् परिपक्व होते ही मुक्ति हो जाएगी।

पहली पहचान-

खरबूजे के फल के पकने की पहली पहचान यह है कि डाल सर्वथा बेल के साथ चली जाये, फल के साथ न आए। डाल अथवा डाल के किसी भाग का फल के साथ आना उसके कच्चेपन की निशानी है। पके फल में यह सम्भव नहीं। मुमुक्षु व्यक्ति भी यह देखे कि संसार से मुक्त होने के प्रयत्न में कोई वासना मेरे साथ तो नहीं आई। यदि वासना का एक तार भी मेरे साथ आयेगा तो वह पुनर्बन्धन

का कारण होगा। झटका देकर कच्चे फल को तोड़ने से डाल के किसी भी तन्तु का साथ आना सम्भव है। इसलिए हे मुमुक्षो! किसी घबराहट से, अथवा किसी आधि-व्याधि से, उतावलेपन से झटका देने का साहस न करना। अन्यथा वासनाओं के ये तार तेरे-पीछे चले आयेंगे और कहीं-न-कहीं उलझा लेंगे।

दूसरी पहचान-

मुमुक्षो! खरबूजे फल के पकने की दूसरी पहचान है उसकी गन्ध। परिपक्व फल अपने पकने की सूचना गन्ध से देने लगता है। उसकी गन्ध से आसपास का वातावरण सुवासित हो उठता है। यह सुगन्ध तब तक रुकी हुई थी जब तक डाल जुड़ी हुई थी। डाल पृथक् हुई कि सुगन्ध फूट पड़ी। जिस प्रकार शीशी में बन्द पड़े हुए इत्र का कुछ पता नहीं कि इसमें क्या है, परन्तु जैसे ही डाट खुली कि सारा वातावरण सुवासित हो गया। अत: वातावरण को सुगन्धित करने के लिए डाल का पृथक् होना आवश्यक है। निष्कर्ष यह निकला कि बिना बंधे सुगन्ध उत्पन्न हो नहीं सकती और बिना छूटे सुगन्ध फैल नहीं सकती। प्राय: देखा गया है कि घर में खरबूजे लाए गए और उन्हें बच्चों की आंख से बचाकर रख दिया गया। बच्चों ने घर में प्रवेश करते ही ताड़ लिया कि आज तो घर में खरबूजे आए हैं! देखकर नहीं, सूंघकर।

इसी प्रकार हे मुमुक्षो! तू मुक्ति का अधिकारी हुआ है या नहीं, इसकी जांच करनी हो तो खरबूजे फल को उपमा बना लेना। देखना कि तेरे जीवन-फल की पुण्य गन्धा दिग्दिगन्त में व्याप्त हुई है या नहीं? यदि हो गई है तो अपने को मुक्ति का पात्र मानना, अन्यथा समझना कि अभी मैं कच्चा हूं। डाल पृथक् नहीं हुई है। वासना-डाल ने अभी तेरी गन्ध को रोका हुआ है। इसलिए निरन्तर पकने के प्रयास करते रहना, उस समय तक जब तक तेरी पुण्य गन्धा सर्वत्र फैल नहीं जाती। यह जीवन-फल के पकने की दूसरी पहचान है। लोग सुगन्ध पाकर तेरी ओर खिंचे चले आएं। लाख छुपा हुआ हो, तुझे ढूंढ ही निकालें।

तीसरी पहचान-

खरबूजे के पकने की तीसरी पहचान है उसका रंग-रूप। जहां उसकी अन्तरात्मा सुगन्ध से परिपूर्ण हो, वहां बाहर का रूप-रंग भी आकर्षक हो, इतना कि साथी पर रंग छोड़े बिना न रहे। फल की सुगन्ध जहां दूर जाते व्यक्ति को समीप लाती है, वहां उसका रूप समीप आए व्यक्ति को प्रभावित करता है, अपना रंग छोड़ने लगता है, हिलने नहीं देता। इसलिए प्राय: खरबूजा खरीदते समय लोग जहां बार-बार गन्ध लेकर फल पकने की पहचान करते हैं, वहां उसकी रंगत भी देखते हैं।

हे मुमुक्षो! अपने पकने की जांच करने के लिए खरबूजे फल को कसौटी बनाना। तू यह अवश्य देखना कि तेरे जीवन-फल की पुण्य गन्ध ने वातावरण को सुवासित किया अथवा नहीं? लोग तेरे पास खिंचे चले आ रहे हैं अथवा नहीं? तेरी संगति में बैठने को लालायित हैं वा नहीं? यह भी देखना कि तेरे निकट आये व्यक्तियों पर कुछ रंग चढ़ा वा नहीं? यदि तेरा रंग पड़ोसी पर चढ़ गया तो अपने को मुक्ति का अधिकारी समझना, यदि नहीं चढ़ा तो समझ लेना कि अभी तू कच्चा है, मृत्यु-बन्धन से छुटकारा न हो पाएगा। यह सर्वथा असम्भव है कि पके हुए व्यक्ति की संगति में कोई आए और उस पर रंग न चढ़े। कहावत है 'खरबूजा खरबूजे को देखकर रंग पकड़ता है।' यह मानना कि खरबूजे के समीप लगे करेले पर रंग चढ़ना असम्भव है, परन्तु समीप लगे खरबूजे पर तो रंग छोड़ ही देना। तेरी संगति में यदि मनुष्य आए तो तुझसे प्रभावित हुए बिना न लौटे। इसलिए अपने जीवनफल की परिपक्वता की जांच करने के लिए यह देख लेना कि पड़ोसी पर तू रंग छोड़ता है या नहीं? यह फल पकने और जीवन को परखने की तीसरी पहचान है।

चौथी पहचान-

परिपक्व खरबूजे की चौथी विशेषता यह है कि खरबूजे में उसका रस समा नहीं पाता, वह फूटकर बहने लगता है। मानो निकट आए व्यक्ति को कहता हो कि मेरी सुगन्ध और रूप पर ही मोहित न होओ, मेरे हृदय को टटोलकर देखो, उसमें रस-ही-रस भरा हुआ है, मैंने अपना हृदय आपके सामने खोलकर रख दिया है। यदि फिर भी मुझे न पहचान पाओ तो यही समझूंगा कि मेरे पारखी दुनिया में नहीं रहे। साधक! तुझे भी देखना होगा कि तेरा हृदय-स्रोत जनता-जनार्दन की प्यास बुझाने को फूटा पड़ा है कि नहीं? यदि तेरा हृदय नीरस है तो यह दूर तक गन्ध पहुंचाना और आकर्षक रूप दिखावा मात्र है, पाखण्ड है। इसलिए जैसे बाहर से हो वैसे अन्दर से भी रहो! हृदय में सरसता हो जिससे सरस्वती फूट पड़े, जिसका पान करके लोग तृप्त हो उठें। 'यदन्तरं तद् बाह्यम् (अथर्व० २/३०/४)' - बाहर से भी आकर्षक, अन्दर से भी सरस।

पांचवीं पहचान-

खरबूजे में यह रस इतना परिपूर्ण हो जाता है कि वह फूट पड़ता है। प्राय: इसीलिए लोग फटे हुए खरबूजे को खरीदना पसन्द करते हैं। उनको यह भरोसा होता है कि वह बड़ा मधुर होगा, और जैसे ही तराशकर एक फांक जिह्वा पर रक्खी कि सहसा मुंह से निकला- वाह! मिश्री-सा

मीठा है! शहद-सा शीरीं है!

इसी प्रकार हे जिज्ञासो! यह व्यक्त होने वाली वाणी ही मधुर न हो, उसका मूल स्रोत हृदय भी माधुर्य से भरा हो। सरस्वती का प्रवाह जहां अक्षय हो, वहां माधुर्य से भरा होना चाहिए- 'जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् (अथर्व० 1/34/2)'। पांचवीं पहचान से अपनी जांच कर लेना। ठीक इसी के तुल्य अन्तः करण को मधुर बना लेना। फिर कहीं मृत्यु से छूटने का नाम लेना।

छठी पहचान-

हे भक्त! खरबूजे के अन्दर जहां रस होता है, जहां माधुर्य होता है, वहां एकरूपता भी होती है। उसके पकने की यह छठी पहचान है। वह अन्दर से एकरस, एकरूप, एकरंग है। बाहर की विविधता का उसके अन्तःकरण पर कोई प्रभाव नहीं। हे मुमुक्षो! अपने हृदय को जांचना, वहां इसी प्रकार की भावना की स्थापना कर लेना! अपने-पराये की भावना को उसमें स्थान न देना! समस्त वसुधा को अपने हृदय में संजो रखना! फिर तू अमृत का अधिकारी होगा। बिना हाथ छुआए सहज ही पृथक् हो जाएगा।

सातवीं पहचान-

सातवीं पहचान है उसके अन्दर के बीजों का गूदे में खुभे न रहना, गूदे को छोड़कर अलग हो जाना। प्रत्येक जिज्ञासु को इस उपमा से यह उपदेश लेना होगा कि मृत्यु-बन्धन से छूटने के लिए जहां बाह्य विषय-वासनाएं उसे छोड़ जाएं, वहां अन्तःकरण में पड़े हुए गुप्त और सुप्त संस्काररूप बीज भी उसे छोड़ जाएं। जिस प्रकार बाह्य वासनाओं का एक भी कच्चा तार पुनर्बन्धन का कारण बन सकता है, वैसे ही अन्तःकरण में पड़े हुए संस्कार-बीज भी मृत्यु-बन्धन का कारण बन सकते हैं। इसलिए जीवन-फल को परिपक्व करने के लिए जहां बाह्य वासनाओं से छुटकारा पा लेना आवश्यक है, वहां अन्तःकरण में पड़े हुए संस्कार-बीज को निश्शेष कर देना भी आवश्यक है।

आठवीं पहचान-

हम खरबूजे फल के अन्दर की एकरसता, एकरूपता का वर्णन कर आए हैं। परन्तु खरबूजे का बाहरी रूप-रंग ठीक उससे भिन्न है। आप खरबूजे के ऊपर की फांकों की गणना कीजिए। वे गिनती में दस निकलेंगे। खरबूजे को दशांगुल कहने का कारण यही प्रतीत होता है। खरबूजे के ऊपर बनी दस फांकें दश अंगुल का प्रतीक है, मानो खरबूजा फल कहता है कि ऐ भक्त! अपने जीवन-फल को पकाने के लिए तेरे दोनों हाथों की ये दस अंगुलियां काम आनी चाहिए। इनकी छाप स्पष्ट नजर आनी चाहिए। किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा पकाए फल के उपभोग की कामनामात्र भी तेरे लिए अभिशाप है। पुण्य कोई करे और फल तू खाए, यह पुरुष के लिए उचित नहीं। तुझे तो गर्व से ये शब्द कहने चाहिए- 'कृतं मे दक्षिणे

हस्ते, जयो मे सव्य आहितः (अथर्व० 7/5०/8)' अर्थात् मेरे दाहिने हाथ में पुरुषार्थ है और बाएं हाथ में सफलता। जिस फल पर मेरे पुरुषार्थरूप दस अंगुलियों की छाप पड़ेगी, उसी का स्वयं उपभोग करूँगा और अन्यों को भी कराऊंगा। उसी फल को पाकर सफल बनूंगा।

खरबूजे फल पर बनी दस फांकें जहां दस अंगुलियों का प्रतीक हैं, जहां पुरुषार्थ की छाप का प्रतीक हैं, वहां पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पँच कर्मेन्द्रियों की छाप का भी प्रतीक हैं। जीवन-फल की उपलब्धि इन्हीं इन्द्रियों के माध्यम से सम्भव है। परन्तु पुरुषोत्तम व्यक्ति वह है जो इस फल की कामना से ऊपर रहता है। पुरुष-सूक्त में ऐसे ही व्यक्ति का वर्णन करते हुए कहा है- 'अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् (ऋ० 1०/9०/1)' - वह पुरुष दश अंगुल का अतिक्रमण करके ठहरता है। इसी वास्तविकता के दर्शन खरबूजे फल में भी किये जा सकते हैं। उसमें अन्तर्निहित रस और माधुर्य ऊपर के दशाङ्गुल छिलके का अतिक्रमण करके बहता है।

उपासक! इस रस का आस्वादन छिलके को पृथक् करके ही किया जाता है। देखना, तुझे भी प्रकृतिरूपी छिलके को पृथक् करना होगा, तभी तू ब्रह्मानन्द-रस का आस्वाद ले पायेगा। निस्सन्देह परम रस और परम गन्ध, प्रकृति, छिलके में ही बन्द रहती है। तेरे अन्तर्हृदय में बहनेवाला रस भी नाभि-केन्द्र से ठीक दस अंगुल अतिक्रमण करके रहता है। यदि कहीं उसका स्रोत मस्तिष्क को मान लें, तो भी वह त्रिकुटि से दशाङ्गुल ऊपर सहस्रार चक्र में रहता है। अहा! खरबूजे के पकने की यह पहचान क्या सुन्दर उपदेश दे रही है।

नवीं पहचान-

वनस्पति-जगत् में वृक्षों की अपेक्षा बेलों में यह विशेषता है कि वे अपने समीपस्थ आश्रय पर फैल जाती हैं। वृक्षादि का सहारा पाकर लिपटती और चढ़ती चली जाती हैं। बेलों के हर जोड़ और फटाव पर कुछ तन्तु निकलते रहते हैं जो उनके जमाव में सहायता देते हैं। यह विशेषता खरबूजे की बेल में भी है। जहां हर जोड़ से निकले हुए ये तन्तु जड़ जमाते हैं, वहां भोजन भी ग्रहण करते हैं। इन्हीं के कारण बेल पनपती, फूलती, फलती है।

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

वास्तविक सत्ता जीवन की है–मृत्यु अयथार्थ है

❑पं० **उम्मेदसिंह विशारद,** वैदिक प्रचारक गढ़ निवास, मोहकमपुर,
देहरादून (उत्तराखण्ड) मो०–९४११५१२०१९, ९५५७६४१८००

संसार मे सभी प्राणी मृत्यु के भय से ग्रसित हैं, और प्रत्येक क्षण मृत्यु से बचने का प्रयत्न करते रहते हैं। यह सभी जानते व मानते हैं कि एक दिन मेरी मृत्यु होगी, किन्तु उस सत्य को स्वीकार करने में उपेक्षा करते हैं।

हम समझते हैं कि जीवन और मृत्यु दो स्वतन्त्र सत्ताएँ है। एक तरफ जीवन खड़ा है, दूसरी तरफ मृत्यु खड़ी है, परन्तु ऐसा नही हैं। यथार्थ सत्ता जीवन की है, मृत्यु आगामी जीवन में प्रवेश करने का द्वार है। जीवन में मृत्यु और मृत्यु में जीवन घुला–मिला है। जीना और मरना जोड़ा है और सदा साथ रहता है। मृत्यु के अभाव का नाम जीवन नहीं है, क्योंकि मृत्यु के बिना जीवन रह सकता है। मृत्यु का भय तभी तक रहता है जब तक मृत्यु का साक्षात्कार नहीं हो जाता। जब मनुष्य मृत्यु के रहस्य को समझ जाता है, तब मृत्यु का भय जाता रहता है और जीवन का दृष्टिकोण ही बदल जाता है।

रूपान्तरण का ही दूसरा नाम 'मृत्यु' है

संसार मे किसी वस्तु का नाश नहीं होता, उसका रूप बदल जाता है। विज्ञान का अटल नियम है कोई वस्तु नष्ट नहीं होती, रूपान्तरित हो जाती है। हम शरीर के नष्ट होने को मृत्यु कहते हैं, किन्तु यह तो शरीर के तत्त्वों का रूपान्तरित हो जाना ही है। शरीर पांच तत्त्वों से बना है। पृथ्वी तत्त्व पृथ्वी में, जलीय तत्त्व जल में, आग्नेय तत्त्व अग्नि में, वायवीय तत्त्व वायु में चला जाता है, आकाश तत्त्व आकाश में चला जाता है। शरीर तो परमाणुओं के संयोग से बना है। मृत्यु के समय परमाणुओं का संयोग जाता रहता है, परमाणु नष्ट नही होते। और चेतना परमाणुओं के संयोग से नहीं बनी। मृत्यु के समय चेतन आत्मा का स्थानान्तरण होता है। जैसे शरीर का रूपान्तरण होता है वैसे आत्मा का स्थानान्तरण होता है, यह एक शरीर छोड़ कर दूसरा शरीर धारण कर लेता है। शरीर के रूपान्तरण को मृत्यु कहते हैं और आत्मा के स्थानान्तरण को पुनर्जन्म कहा जाता है। आत्मा का नाश नहीं होता, आत्मा सिर्फ शरीर बदलता है। मानो पुराने चोले को उतार कर नया चोला धारण कर लेता है। वास्तव मे आत्मा के लिए मृत्यु की कोई स ा नहीं है, आत्मा के लिए मृत्यु अयथार्थ है।

मृत्यु का स्वरूप

जो जन्म लेता है, वह अवश्य मरता है, परन्तु यह किसी को पता नही है कि मृत्यु क्या है। हमारा सम्पूर्ण जीवन मृत्यु को सत्य मान कर बना हुआ है और मृत्यु का भय हमारे सभी कार्यों मे सन्निहित है। हम खाते हैं, पानी पीते हैं, परिवार बनाते हैं कि हमें कौन सम्भालेगा। हम जीवन का हर कार्य मृत्यु से बचने के लिये करते हैं। किसी ने सत्य ही कहा है कि यह आश्चर्य की बात नहीं है कि मनुष्य जिन्दा है, आश्चर्य तो इस बात का है कि पग–पग पर मृत्यु का शिकंजा होने पर भी कैसे जी रहा है। हम कहते हैं– बालक ने जन्म ले लिया है किन्तु हम भौतिक चका चौंध में भूल जाते हैं कि जन्म लेते ही वह मृत्यु की तरफ कदम बढ़ाने लगता है।

वैदिक विचार धारा का कहना है कि मृत्यु का अस्तित्त्व ही नहीं है। यह एक मिथ्या विचार है। इसके वास्तविक स्वरूप को समझ लेने से मृत्यु स्वयं मिट जाती हे, क्योंकि मृत्यु शरीर की होती है, आत्मा की नहीं होती। आत्मा की शरीर में भिन्न स्वतन्त्र सत्ता है। जन्म शरीर का होता है तो मृत्यु भी शरीर की होती है। आत्मा शरीर को सिर्फ धारण करता है। शरीर का मरण जन्म से ही शुरू हो जाता है, परन्तु शरीर के मरण के पीछे एक सत्ता बनी रहती है जो इन मरती हुई कोशिकाओं में एकसूत्रता बनाए रखती है। शरीर मरता है, आत्मा नहीं मरती। शरीर बूढ़ा व रोगी

होता है आत्मा बूढ़ा व रोगी नहीं होता।

शरीर की मृत्यु प्रतिक्षण होती रहती है

हमारा शरीर कोशिकाओं से बना हुआ है। कोशिकाएं हर समय टूटती व बनती रहती हैं। बाल हैं, नख हैं, ये सब शरीर के मृत भाग ही तो हैं। शरीर के परमाणु बदलते बदलते सात साल में सारा शरीर बदल जाता है। हमारे सम्पूर्ण जीवन में शरीर नौ या दस बार बदल चुका होता है। मृत्यु के अन्तिम क्षण में नई कोशिकायें बनना सर्वथा बन्द हो जाती हैं। पुरानी सब टूट जाती हैं और नई बनती नहीं। इसी को हम मृत्यु कहते हैं। लोग कहते हैं कि शरीर नष्ट होने के साथ वह चेतन शक्ति भी नष्ट हो जाती है, यह एक अनहोनी बात है। हर वस्तु किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये पैदा हुई है और उस लक्ष्य की पूर्ति के लिये क्रियाशील है। शरीर छूट जाय तो आत्मा दूसरे शरीर को प्राप्त कर लेता है–मृत्यु शरीर की होती है, आत्मा की नहीं।

वास्तविक सत्ता जीवन की है–मृत्यु अयथार्थ है

मृत्यु एक भ्रम है। कभी–कभी जो होता ही नहीं, वह मान लिया जाता है। भूत से सब डरते हैं, परन्तु भूत क्या है? अगर भूत से डरने वाला जान जाये कि भूत एक भ्रम है तो क्या वह भूत से डरेगा? क्योंकि भूत की कोई सत्ता नहीं है। हम उसकी कल्पना कर लेते हैं, तभी उससे डर लगता है। मृत्यु का स्वरूप भी ऐसा ही है। आत्मा के लिये मृत्यु है ही नहीं, उसकी कोई सत्ता नहीं। मृत्यु छाया के समान है। जैसे भूत का कोई अस्तित्व नहीं है, वैसे छाया का भी नहीं है। छाया की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है, प्रकाश के रुक जाने का नाम छाया है। छाया प्राणी का पीछा करती है, मृत्यु से भय खाना छाया से डर जाने के समान है। मृत्यु अन्धेरा है, अन्धेरे की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। स्वतन्त्र सत्ता प्रकाश की है। जैसे कारखाने में बैटरी खत्म होने के बाद मालिक नई बैटरी ले लेता है, और कारीगर का काम नहीं रुकता है। कारीगर नई बैटरी से काम लेने लगता है। इसी प्रकाश आत्मा पुराने शरीर को छोडकर जब नये शरीर में आता है तब बच्चे का शरीर ग्रहण करता है, जो नई बैटरी की तरह शक्ति से भरपूर और तरोताजा होता है।

शरीर का मालिक आत्मा है

जो पदार्थ व वस्तु अपने लिये नहीं है, दूसरों के भोग के लिये बनी है। जैसे मकान खुद अपने लिये नहीं होता, मालिक के लिये होता है। इसी प्रकार कपड़ा अपने स्वयं के लिये नहीं, शरीर के लिये होता है। शरीर भी स्वयं शरीर के लिये नहीं, यह आत्मा के लिये है। शरीर में कोई सत्ता है जो उसका उपयोग करती है। वह सत्ता अदृश्य है। अतः हम इस परिणाम पर पहुंच जाते हैं कि शरीर का मालिक कोई अशरीरी अदृश्य सत्ता है।

मृत्यु के समय स्थिति

मृत्यु के समय आत्मा इन्द्रियों को अन्दर खींच लेती है। सभी इन्द्रियाँ अपना कार्य बन्द कर देती हैं। उस समय हृदय के अग्र प्रदेश में हिता नाम की नाडियाँ हृदय से ऊपर उठ जाती हैं और हृदय का अग्र भाग आत्मा की ज्योति से प्रकाशित हो जाता है। और इसी ज्योति के साथ आत्मा चक्षु से, मूर्धा से या शरीर के किसी अन्य प्रदेश से निष्क्रमण कर देता है और इन्द्रियाँ भी पीछे–पीछे निकलने लगती हैं। जीव मरते समय सविज्ञान ही जाता है। जीवन के सारे खेल इसके सामने आ जाते हैं और विद्या पूर्वक प्रजा भी साथ ले जाता है। जैसे तृणजला शुण्डी तिनके के अन्त पर पहुंच कर दूसरे तिनके के सहारे को पकड़कर अपनी ओर खेंच लेता है। इसी प्रकार आत्मा भी इस शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो जाती है और वाणी अग्नि में, प्राण वायु में, चक्षु आदित्य में, मन चन्द्रमा में, श्रोत्र दिशाओं में, शरीर पृथ्वी में, शरीरवर्ती आकाश ब्रह्माण्ड में, लोम औषधी में, केश वनस्पतियों में, शोणित और रेत जल में लीन हो जाते हैं। कार्य अपने कारण में, और पिण्ड ब्रह्माण्ड में चल देता है। जीव का आधार केवल कर्म ही बचते हैं और वह कर्मानुसार जन्म लेता है।

नोटः कुछ सारांश इस लेख मे 'वैदिक विचार धारा का वैज्ञानिक आधार' (डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार) से भी लिया गया है।

सुख कहाँ है कहाँ नहीं है!

❖सुख त्याग में है––– संग्रह में नहीं।
❖सुख सरलता और निष्कपटता में है–– छल कपट में नहीं।
❖सुख प्रेम और प्रीति में है–– द्वेष में नहीं।
❖सुख शांति और सौम्यता में है–– आवेश में नहीं।
❖सुख अनासक्ति में है–– आसक्ति में नहीं।
❖सुख क्षमा करने में है–– बदला लेने में नहीं।
❖सुख परोपकार में है–– स्वार्थ में नहीं।
❖सुख इच्छाओं और आवश्यकताओं को घटाने में है–– बढ़ाने में नहीं।
❖सुख धर्म की कमाई खाने में है–– अधर्म की कमाई खाने में नहीं।
❖सुख आत्म–संयम में है–– विलासिता में नहीं।

सुखबीर सिंह दहिया रोहतक
9729213111

स्वास्थ्य चर्चा

आरोग्यप्रद आहार के स्वर्णिम सूत्र

❒ आयुर्वेद शिरोमणि डॉ० मनोहरलाल अग्रावत

(१) बिना कड़ी भूख भोजन न करें। भोजन उतना ही करें कि पेट को बोझ महसूस न हो। कहावत भी है-'आधा भोजन, दुगुना पानी, तिगुना श्रम, चौगुनी मुस्कान।'

(२) भोजन करते समय चित्त में प्रसन्नता हो। खाते समय बातें बिल्कुल न करें। चिंता, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, भय आदि मानसिक उद्वेग के समय भोजन न करें। यह भोजन ठीक से नहीं पचेगा, रोग पैदा करेगा। भोजन को प्रभु का प्रसाद व हर ग्रास को अमृततुल्य स्वास्थ्यप्रद मानकर करें।

(३) अनाज को चक्की में अधिक महीन पीसने से तथा तलने, भूनने से स्वाभाविक गुण आवश्यक खनिज लवण, विटामिन्स नष्ट हो जाते हैं। अतः मोटे आटे (चोकरयुक्त) की रोटी ही खाएं। भोजन को भाप में पकाकर कम मसालों का प्रयोग करें। घी, तेल पचने में भारी होते हैं अतः दूध, दही, अंकुरित अनाज आदि से इनकी पूर्ति कर लेनी चाहिए। अंकुरित अनाज-चना, मूंग, मूंगफली, गेहूं तथा नारियल आदि में पर्याप्त पोषक तत्व हैं। अंकुरित अन्न में पोषण शक्ति कई गुना बढ़ जाती है। नित्य प्रातः पचास ग्राम अंकुरित अन्न खूब चबा-चबाकर सेवन करना चाहिए।

(४) सप्ताह में एक दिन पेट को छुट्टी देने के लिए उपवास की आदत डालें। जब कर्मचारियों को स्फूर्ति अर्जित करने के लिए साप्ताहिक अवकाश मिलता है तो पेट को छुट्टी क्यों न मिले? वास्तविक उपवास वह है जिसमें जल की कुछ मात्रा बढ़ाकर उसमें नींबू डालकर पिया जाता है। यह न बन पड़े तो दूध, छाछ फलों का रस लेकर काम चलाना चाहिये। पूरे दिन जिन्हें भूखे रहना कठिन हो तो एक समय शाम को तो उपवास कर ही लें। उपवास से पाचन शक्ति बढ़ती है तथा शरीर शोधन में बड़ा सहयोग मिलता है।

(५) खाद्य पदार्थों को सीलन, सड़ने वाले स्थानों एवं बदबू वाले पात्रों में नहीं रखना चाहिए। चूहे, घुन आदि कीड़े उन्हें जहरीला न बनाएं इसलिए सभी खाद्य पदार्थ ढककर रखने चाहिए। समय-समय पर धूप में सुखाते रहना चाहिए। पकाने एवं खाने के उपकरण साफ सुथरे रखने चाहिएँ जिससे उनमें विषाक्तता उत्पन्न न हो। सभी प्रकार के नशे हानिकारक हैं। उनमें से किसी का भी व्यसन नहीं अपनाना चाहिये। क्षणिक उत्तेजना के लिए शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य चौपट करने, अकाल मृत्यु तथा सर्वत्र निंदित होने एवं परिवार को अस्त-व्यस्त करने वाली इस बुराई से हर किसी को बचना चाहिये, जिन्हें यह लत लगी हो उन्हें इसे छोड़ने का प्रयत्न करना चाहिये।

(६) सड़े गले शाक, सब्जी, फल, मिठाई आदि को खाते रहना बुरी बात है। स्वाद, नाम या मूल्य के आधार पर नहीं, खाद्य पदार्थों की वरीयता उनके सुपाच्य और ताजे होने पर दी जानी चाहिये। सड़े अंगूरों की तुलना में ताजे टमाटर हजार गुने अच्छे हैं। आवश्यक नहीं कि कीमती मेवा, फल या टॉनिकों पर धन पानी की तरह बहाया जाए और पहलवान बनने का सपना देखा जाए। जिनके पास उतना धन नहीं है वे अंकुरित अन्न से भी बादाम जैसा पोषण पा सकते हैं। गाजर में उच्च कोटि का विटामिन 'ए' है। गाजर का रस नित्य पीने से रक्त की शुद्धि होती है। गाजर का रस स्वयं ही एक टॉनिक है। आंवला, नींबू, केला, अमरूद, सेव, संतरा, मौसमी जैसे मौसमी फल टॉनिकों से बढ़कर हैं।

(७) भोजन करते समय ठीक से चबाना चाहिए। इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य विषय हैं-

(क) चबा चबाकर भोजन करने से कम खाकर भी अधिक तृप्ति मिलती है। मोटापा नियंत्रित करने के लिए चबा चबाकर धीरे-धीरे भोजन करना चाहिए। चबाने से खून में सेरीटोनिन नामक हार्मोन की मात्रा बढ़ जाती है जिससे अनिंद्रा, तनाव, मानसिक अवसाद, सिरदर्द आदि रोग दूर हो जाते हैं।

(ख) भोजन को ठीक तरह चबाने से आंतों की क्रिया ठीक रहने से उपापचन ठीक होता है। फलःस्वरूप डायबिटीज (शुगर) संधिवात, गठिया इत्यादि रोग ठीक होते हैं।

(ग) चबा चबाकर खाने से हाइपर एसिडिटी (अति अम्लता) तथा भूख न रखने की शिकायत दूर हो जाती है।

(८) भोजन के साथ पानी पीने की आदत ठीक नहीं है। भोजन करने के एक घंटे पूर्व से पानी न पिएं तथा भोजन करने के डेढ़ घंटे बाद पानी खूब मात्रा में पिएं। भोजन को ठीक तरह चबाने पर लार (सलाइवा) अच्छी तरह मिल जाने से पानी की आवश्यकता नहीं रह जाती है। यदि आवश्यक हुआ तो ५०-१०० ग्राम जल पिया जा सकता है।

(९) सुबह उठकर दो गिलास पानी पीना आंतों की शुद्धि के लिए हितकारक है। दोनों भोजन (सुबह-शाम) के बीच के समय में पर्याप्त पानी पीते रहें। नित्य अढाई से साढ़े तीन लीटर पानी पीना चाहिये। एक साथ अधिक मात्रा में पानी

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

जानते हो!

❐आस्था

भारत के प्रथम

राष्ट्रपति– डॉ० राजेन्द्र प्रसाद
उपराष्ट्रपति – डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्
अंतरिक्ष यात्री – स्क्वाड्रन लीडर राकेश शर्मा
आई० सी० एस० – सत्येन्द्रनाथ टैगोर
नोबेल पुरस्कार विजेता– रवीन्द्र नाथ टैगोर
महिला प्रधानमंत्री – श्रीमती इन्दिरा गांधी
महिला राज्यपाल – श्रीमती सरोजनी नायडू (उ० प्र०)
महिला आई० पी० एस०– किरण बेदी
केन्द्रीय मंत्रीमण्डल में महिला मंत्री– राजकुमारी अमृतकौर
महिला मुख्यमंत्री– सुचेता कृपलानी (उ० प्र०)
माऊंट एवरेस्ट विजेता महिला पर्वतारोही– बछेन्द्री पाल
महिला पायलट – फ्लाईंग आफिसर सुषमा मुखोपाध्याय
महिला आई० ए० एस० – अन्ना जार्ज (मल्होत्रा)
दूरदर्शन समाचार वाचिका– प्रतिमा पुरी

☺☺☺हास्यम्☺☺☺

प्रेषक : हर्षित आर्य इण्डस स्कूल, मिर्चपुर

❍दादाजी– बेटा, तुम्हें स्कूल में सबसे अच्छा कौन लगता है?
आदित्य– स्कूल का चपरासी।
दादाजी– वह क्यों?
आदित्य– क्योंकि वह छुट्टी की घंटी बजाता है।

❍माता– बेटा जल्दी तैयार हो जाओ, स्कूल में देर हो रही है।
बेटा– कोई जल्दी नहीं है, स्कूल शाम तक खुला रहता है।

●आसु– भाई, कमाल है, अण्डे में से बच्चे बाहर कैसे आ जाते हैं?
गोलू– हाँ, है तो आश्चर्य की बात! पर मैं तो यह सोचकर हैरान हूँ कि वे अण्डे के अन्दर घुस कैसे जाते हैं!

●पासु– तुम्हार पिताजी क्या काम करते हैं?
आसु– जो मम्मी कहती है।

●एक लड़का कुएँ में पानी भरने गया वहाँ उसने अपनी परछाई देखी वह भागा भागा अपने घर गया और अपने पिता से बोला– पिता जी कुएँ में तो चोर है।
उसका पिता उसके साथ गया। अबकी बार पिता बोला– अकला चोर ही नहीं यहाँ तो उसका बाप भी है।

डॉक्टर (बच्चे से) बेटा, जरा जीभ तो दिखाना।
बच्चा– नहीं, बड़ों को जीभ दिखाने पर पिताजी डांटते हैं।

❍अध्यापक– बच्चो, उस जानवर का नाम बताओ जो शेर से भी नहीं डरता।
आदित्य– जी, शेरनी।

बाल वाटिका

प्रहेलिका:

❍धूप लगे सूखे नहीं, छांह लगे कुम्हलाय।
कहो कौन सी चीज है हवा लगे मर जाय।।

❍ऊंट जैसे बैठे, मृग सी चलता चाल,
एक जीव ऐसा जिसके पूंछ न बाल।।

❍बिना ईंट और बिन औजार, कुएँ बनाए कई हजार।।
मजदूरों का नाम जो पूछे वह मीठा पाए उपहार।।

❍एक जानवर अजब निराला, झील किनारे बैठा है।
चमक चौंच से देखे दुनिया दुम से पानी पीता है।

❍तीन पैर की तितली, नहा धोकर निकली।
लाल गाय लकड़ी खाय। पानी पीते ही मर जाय।।

❍चार खड़े चार पड़े बीच में ताने बाने।
पैर पसारे सो रहे लम्बी चादर ताने।।

❍छोटे से है मटकूदास,
कपड़े पहने सौ पचास।

❍एक पेड़ की तीस हैं डाली।
आधी सफेद आधी काली।।

पसीना, मेंढक, मधुमक्खी का छत्ता, दीपक,
आग, चारपायी, प्याज, महीना

विचार कणिका:

❐प्रतिभा

❖बिना पुस्तकों के ईश्वर मौन है, न्याय निद्रित है, प्राकृतिक विज्ञान स्तब्ध है, दर्शन लंगड़ा है, शब्द गूंगे और सभी वस्तुएँ पूर्ण अंधकार में हैं। –बार्थालिन

❖बच्चे राष्ट्र की महान विभूति हैं, जिन पर देश का भविष्य टिका रहता है। –महामना मालवीय

❖किसी कार्य का आरम्भ उसका सबसे महत्त्वपूर्ण अंग होता है। –प्लेटो

❖बड़प्पन बुद्धि से होता है, उम्र से नहीं।

❖छोटी छोटी बातों से पूर्णता मिलती है और पूर्णता कोई छोटी चीज नहीं है।

❖जो जैसे व्यक्ति की संगति करता है, वैसा ही हो जाता है।

❖सोने की शुद्धता या मिलावट अग्नि में ही परखी जा सकती है। –कालीदास

❖मनुष्य अपने ही दोषों के कारण शंकित रहता है। –भास

गड़बड़ कहाँ हुई!

एक बहुत ब्रिलियंट लड़का था। सारी जिंदगी प्रथम आया। साइंस में हमेशा सौ प्रतिशत स्कोर किया। उसका सिलेक्शन IIT चेन्नई में हो गया। B Tech किया और आगे पढ़ने अमेरिका चला गया। यूनिवर्सिटी ऑफ केलिफोर्निया से MBA किया। अब इतना पढ़ने के बाद तो वहां अच्छी नौकरी मिल ही जाती है। वहीं नौकरी करने लगा। ५ बेडरूम का घर था उसके पास। शादी यहाँ चेन्नई की ही एक सुन्दर लड़की से हुई। एक आदमी और क्या मांग सकता है अपने जीवन में? इंजिनियर बन गए, अमेरिका में सेटल हो गए, मोटी तनख्वाह, बीवी बच्चे, सुख ही सुख। लेकिन दुर्भाग्यवश आज से चार साल पहले उसने वहीं अमेरिका में, सपरिवार आत्महत्या कर ली। अपनी पत्नी और बच्चों को गोली मार कर खुद को भी गोली मार ली। आखिर ऐसा क्या हुआ, गड़बड़ कहाँ हुई?

यह कदम उठाने से पहले उसने बाकायदा अपनी पत्नी से सलाह की। फिर एक लम्बा सुसाइड-नोट लिखा और उसमें अपने इस कदम को उचित बताया। लिखा कि यही श्रेष्ठ रास्ता था इन परिस्थितियों में। उनके इस केस को और उस पत्र का कैलिफोर्निया के एक मनोवैज्ञानिक संस्थान ने यह जानने के लिए अध्ययन किया कि आखिर गड़बड़ कहाँ हुई?

कारण क्या था, आत्म हत्या से पूर्व लिखे पत्र और मित्रों से पता किया। अमेरिका की मंदी में उसकी नौकरी चली गयी। बहुत दिन खाली बैठे रहे। नौकरियां ढूंढते रहे। फिर अपने खर्च कम करते गए और फिर भी

जब नौकरी न मिली, मकान की किश्त जब टूट गयी, तो सड़क पर आने की नौबत आ गयी। कुछ दिन किसी पेट्रोल पम्प पर तेल भरा बताते हैं। साल भर ये सब बर्दाश्त किया और फिर पति पत्नी ने अंत में खुदकुशी कर ली।

अब उसके जीवन पर शुरू से नजर डालते हैं। पढने में बहुत तेज था, हमेशा फर्स्ट ही आया। गलती करना तो यूँ मानो कोई बहुत बड़ा पाप कर दिया और इसके लिए वे सब कुछ करते हैं, हमेशा प्रथम आने के लिए। फिर ऐसे बच्चे चूंकि पढ़ाकू कुछ ज्यादा होते हैं सो खेल-कूद, घूमना-फिरना-- ऐसे मौके बहुत कम मिलते हैं बेचारों को, १२वीं करके निकले तो इंजीनियरिंग कॉलेज का बोझ लद गया, वहां से निकले तो आइआइटी और अभी पढ़ ही रहे थे कि मोटी तनख्वाह की नौकरी! अब मोटी तनख्वाह- तो बड़ी जिम्मेवारी, यानी बड़े बड़े सपने।

इससे कुछ यह निष्कर्ष निकाला गया, 'यह व्यक्ति सफलता के लिए तो तैयार था, पर इसे जीवन में ये नहीं सिखाया गया कि असफलता का सामना कैसे किया जाए।'

इस किस्से से मिलती जुलती एक कहानी भी है- एक मेमना अपनी माँ से दूर निकल गया। आगे जाकर पहले तो भैंसों के झुण्ड से घिर गया। उनके पैरों तले कुचले जाने से बचा किसी तरह। अभी आगे बढ़ा ही था कि एक सियार उसकी तरफ झपटा। किसी तरह झाड़ियों में घुसकर जान बचाई तो सामने से भेड़िये आते दिखे। बहुत देर वहीं दुबका रहा, किसी तरह माँ के पास वापस पहुंचा तो बोला- माँ, वहां तो बहुत खतरनाक जंगल है।

इस खतरनाक जंगल में जिंदा बचे रहने की ट्रेनिंग बच्चों को अवश्य दीजिये।

दोस्तो, बच्चों को बस किताबी कीड़ा मत बनाईये। बच्चों को पढ़ाई के साथ-साथ धार्मिक, सामाजिक शिक्षा व संस्कार भी देना जरूरी है। हर परिस्थिति को खुशी खुशी धैर्य के साथ झेलने की क्षमता और उससे उबरने का ज्ञान और विवेक बच्चों में होना जरूरी है। आखिर बच्चे हमारे है, जान से प्यारे हैं।

प्रस्तुति **संजय चुघ**

बाल-कविता

सीधे सच्चे बोल

सोच समझकर बोलो
मुख से सच्चे मीठे बोल।
कुदरत का अनमोल खजाना
वाणी है अनमोल।।
अच्छी बात नहीं है
खाना बात बात पर ताव।
जीवन भर नहीं भर पाता है
कटु वाणी का घाव।।
कड़वी बोली से बन जाते
हैं अपने भी गैर।
मीठी बोली से मिटते हैं
सदा सदा के वैर।
मीठी बोली से बनते हैं
सारे बिगड़े काम।
कड़वे बोल बोलने वाले
होते हैं बदनाम।।

-सहदेव समर्पित

भजनावली

❐श्री पण्डित
सत्यपाल जी पथिक

एक

पूर्णमदः पूर्णमिदम पूर्णात् पूर्णमुदच्यते!
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते !! (ईशोपनिषद)

पूर्ण वह परमात्मा है पूर्ण यह संसार है !
अपनी अपनी पूर्णता से पूर्ण हर व्यवहार है।।
पूर्ण से पैदा हुआ है इसलिए जग पूर्ण है।
पूर्ण था पहले भी सब कुछ आज भी सब पूर्ण है।।
पूर्ण सौदागर का अपना पूर्ण कारोबार है।।१।।

पूर्ण से यदि पूर्ण ले लो शेष क्या रह जायेगा।
शेष जो कुछ भी बचेगा पूर्ण ही कहलायेगा।।
पूर्ण घटता है न बढ़ता एक रस एक सार है।।२

प्रभु जगत् में जगत् प्रभु में दूरियां इन में नहीं।
तीनों कालों में पृथकता पलक पल छिन में नहीं।।
पूर्ण प्रभु का न्याय जग में पूर्ण प्रभु का प्यार है।।३।।

पूर्ण प्रभु तो ज्ञानता विज्ञानता में पूर्ण है।
जड़ जगत् निश्चेष्टता अज्ञानता में पूर्ण है।।
'पथिक' दोनों का यहाँ सीमा रहित विस्तार है।।४।।

दो

किसी के काम जो आये, उसे इन्सान कहते हैं।
पराया दर्द अपनाये, उसे इन्सान कहते हैं।।

कभी धनवान है कितना, कभी इन्सान निर्धन है।
कभी सुख है, कभी दुःख है, इसी का नाम जीवन है।।
जो मुश्किल में न घबराये, उसे इन्सान कहते हैं।।१।।

यह दुनियाँ एक उलझन है, कहीं धोखा कहीं ठोकर।
कोई हँस-हँस के जीता है, कोई जीता है रो-रोकर।।
जो गिरकर फिर सँभल जाये, उसे इन्सान कहते हैं।।२।।

अगर गलती रुलाती है, तो राहें भी दिखाती है।
मनुज गलती का पुतला है, यह अक्सर हो ही जाती है।।
जो गलती करके पछताए, उसे इन्सान कहते हैं।।३।।

अकेले ही जो खा खाकर सदा गुजरान करते हैं।
यों भरने को तो दुनिया में, पशु भी पेट भरते हैं।।
'पथिक' जो बाँट कर खाये, उसे इन्सान कहते हैं।।४।।

तीन

कण कण में बसा प्रभु देख रहा,
चाहे पुण्य करो चाहे पाप करो।
कोई उसकी नजर से बच न सका
चाहे पुण्य करो चाहे पाप करो।
यह जगत रचा है ईश्वर ने जीवों के कर्म करने के लिए,
कुछ कर्म नए करने के लिए पहले जो किए भरने के लिए।।
यह आवागमन का चक्र चला
चाहे पुण्य करो चाहे पाप करो।।
इन्सान शुभाशुभ कर्म करें अधिकार मिला ये जमाने में।
कर्मों में स्वतंत्र सदा है यह परतंत्र मगर फल पाने में।।
है न्याय प्रभु का बहुत कड़ा
चाहे पुण्य करो चाहे पाप करो।।
सब पुण्य का फल तो चाहते हैं पर पुण्य कर्म नहीं करते हैं।
फल पाप का लोग नहीं चाहते हैं जिस में दिन रात विचरते हैं।।
मिलता है सभी को अपना किया
चाहे पुण्य करो चाहे पाप करो।।
इस दुनियां में कृत कर्मों का फल हरगिज माफ नहीं होता।
जब तक न यहाँ भुगतान करे यह दामन साफ नहीं होता।।
रहे याद पथिक यह नियम सदा
चाहे पुण्य करो चाहे पाप करो।

चार

ये नर तन तुम्हें निरोग मिला, सत्संगत का भी योग मिला।
फिर भी प्रभु कृपा अनुभव करके यदि भवसागर तुम तर न सके।
फिर मत कहना कुछ कर न सके।।

तुम सत्य तत्त्व ज्ञानी होकर, तुम सहधर्मी ध्यानी होकर।
तुम सरल निरभिमानी होकर, कामना विमुक्त विचर न सके।
फिर मत कहना कुछ कर न सके।।1।।

जग में जो कुछ भी पाओगे, सब यहीं छोड़कर जाओगे।
पछताओगे आगे यदि तुम अपना पुण्यों से जीवन भर न सके।
फिर मत कहना कुछ कर न सके।।2।।

जो सुख सम्पत्ति में भूल रहे, वो वैभव मद में फूल रहे।
उनसे फिर पाप डरेंगे क्यों, जो परमेश्वर से डर न सके।
फिर मत कहना कुछ कर न सके।।3।।

जब अन्त समय आ जायेगा, तब तुम से क्या बन पायेगा।
यदि समय शक्ति के रहते ही आचार-विचार सुधर न सके।
फिर मत कहना कुछ कर न सके।।4।।

होता जब तक न सफल जीवन, है भाररूप सब तन-मन-धन।
यदि पथिक प्रेम पथ पर चलकर अपना या परदुःख हर न सके।
फिर मत कहना कुछ कर न सके।।5।।

स्मृतिशेष वेदज्ञ विद्वान् पं० सुधाकर चतुर्वेदी जी

जब तक मेरा कन्नड़ वेदभाष्य पूरा नहीं हो जाता तब तक मैं मरूँगा नहीं।

❑विमल वधावन एडवोकेट, योगाचार्य

आर्यसमाज के ज्ञानवृद्ध एवं वयोवृद्ध वैदिक विद्वान पं० सुधाकर चतुर्वेदी जी की आत्मा १२४ वर्ष स्वस्थ और सक्षम शरीर के साथ वैदिक धर्म और आर्यसमाज की सेवा में व्यतीत करने के बाद २७ फरवरी, २०२० को शरीर त्याग करके महाप्रयाण की तरफ अग्रसर हुई। वर्ष १८९७ की राम नवमी के दिन जन्म लेने के बाद पं० सुधाकर चतुर्वेदी जी ने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से स्वामी श्रद्धानन्द जी के सान्निध्य में रहकर स्नातक उत्तीर्ण करने का सौभाग्य प्राप्त किया। १२४ वर्ष का जीवन जीने वाले पं० सुधाकर चतुर्वेदी जी तीन शताब्दियों के द्रष्टा बन गये।

गुरुकुल से स्नातक बनकर निकलने के बाद सुधाकर चतुर्वेदी जी वेद के स्वाध्याय और प्रचार के साथ-साथ स्वतंत्रता आन्दोलन में भी भाग लेने लगे। कर्नाटक में उन्हें लोग गाँधी जी का पोस्टमैन कहकर सम्बोधित करते थे। स्वतन्त्रता संग्राम में उन्होंने लम्बी जेल यातना भी सही। जेल की विकट परिस्थितियों के बावजूद भी वे वैदिक स्वाध्याय और ईश्वरभक्ति के पथ से विचलित नहीं हुए। स्वतंत्र भारत में जब स्वतन्त्रता सेनानियों को सम्मान पेंशन की योजनाएँ प्रारम्भ हुई तो पं० सुधाकर चतुर्वेदी जी ने देश सेवा के बदले पेंशन को स्वीकार करना उचित नहीं समझा। यहाँ तक कि उन्होंने वैदिक प्रचार के कार्यों में भी कभी दक्षिणा स्वीकार नहीं की।

ऐसे तपस्वी पं० सुधाकर चतुर्वेदी जी ने अपने जीवन में छोटी-बड़ी १०० से अधिक पुस्तकों का निर्माण करके वैदिक विचारों का शृंखलाबद्ध प्रचार किया। एक तरफ अंग्रेजी भाषा में 'ग्रेस एण्ड ग्लोरी ऑफ वेदाज़' नामक उनकी पुस्तक दक्षिण भारत में अत्यन्त प्रसिद्ध हुई तो दूसरी तरफ विगत लगभग तीन दशकों से वे कन्नड़ भाषा में वेद भाष्य तैयार करने में जुटे रहे।

वर्ष २००१ में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्कालीन कार्यकारी प्रधान श्री विमल वधावन ने जब उनसे १०४ वर्ष की आयु पूर्ण होने पर वार्तालाप किया तो पण्डित जी ने पूरे उत्साह से उत्तर दिया था कि जब तक मेरा कन्नड़ वेदभाष्य पूरा नहीं हो जाता तब तक मैं मरूँगा नहीं। वेद माता के प्रचार से उत्पन्न पवित्र वाणी के बल के सामने दैविक शक्तियों को भी नतमस्तक होना पड़ा। परिणामस्वरूप

पं० सुधाकर चतुर्वेदी जी का कन्नड़ वेद भाष्य लगभग दो-तीन वर्ष पूर्व ही समाप्त हुआ। २० पुस्तकों में रचित उनका कन्नड़ वेद भाष्य पूरा होने के बाद ही उनकी आत्मा को सद्गति प्राप्त हुई।

पं० सुधाकर चतुर्वेदी जी के महाप्रयाण के बाद उनकी सुपौत्री डॉ० सुमित्रा चतुर्वेदी उनके जीवन कार्यों को लेकर अत्यन्त उत्साहित हैं और उनकी समस्त रचनाओं तथा हजारों की संख्या में संकलित अन्य ग्रन्थों को एक विशाल पुस्तकालय का रूप देने के लिए तत्पर हैं जिससे कन्नड़ भाषी वैदिक अनुयायियों को वेद ज्ञान की सुविधा सुलभ रूप से प्राप्त होती रहे। सरकारी चिकित्सक के पद से सेवानिवृत्त डॉ० सुमित्रा चतुर्वेदी जी ने उनकी स्मृति में एक न्यास गठित करने का भी विचार किया है।

पं० सुधाकर चतुर्वेदी जी की स्मृति में आर्यसमाज विश्वेश्वरम् पुरम बंगलुरू के अन्तर्गत एक जनसभा का आयोजन किया गया। इस सभा में कर्नाटक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री सुभाष अष्टीकर, उपप्रधान श्री सूरज प्रकाश कुमार, महामंत्री श्री ऋषिमित्र, पूर्व महामंत्री श्री सत्यमुनि (पूर्व नाम श्री सत्यव्रत) सहित अनेकों आर्य समाजों के अधिकारी तथा आर्यजन उपस्थित थे।

श्रद्धांजली

महाशय स्वरूपलाल आर्य : एक प्रणम्य व्यक्तित्व

❑**अमित कुमार**, सिवाहा, जिला जींद (9728509096)

अकेले अपने दम पर 33 एकड़ की खेती करने वाले प्रचारक

आर्यसमाज के यशस्वी प्रचारक महाशय स्वरूपलाल आर्य का गत ७ मार्च को ९० वर्ष की आयु में देहान्त हो गया। उन्होंने एक साधारण कृषक का जीवन जीते हुए वेद के आदेश 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' को साकार करने में अहम भूमिका निभाई। गुरुकुलों का प्रचार, पाखंड खण्डन, शास्त्रार्थ आदि द्वारा अपने सुख व आराम को त्यागकर सर्वस्व आर्यसमाज को समर्पित कर दिया। महाशय जी का जन्म गांव शामदो (जींद) में 12 मार्च 193० को श्री मंगलदेव जी के घर धर्मपरायण माता श्रीमती मायकौर के गर्भ से हुआ। बाल्यावस्था में साधारण शिक्षा ही ग्रहण कर पाए। आपका विवाह खापड़ गांव की शांतिदेवी से हुआ। इनकी पांच संतान हैं। परिवार समृद्ध और प्रतिष्ठित है। श्रीमती शांतिदेवी का देहान्त लगभग 35 वर्ष पहले हो चुका है।

आर्यसमाज में प्रवेश

लगभग आजादी के बाद सुप्रसिद्ध भजनीक दादा शिवनारायण जी डाहौला वाले शामदो आए। महाशयजी ने दादा शिवनारायण जी से यज्ञोपवीत धारण किया। धीरे धीरे ये भी कविता बनाने लगे और शौकिया तौर पर प्रचार भी करने लगे। सन् 1952/53 में गुरुकुल झज्जर में आचार्य भगवानदेव जी (स्वामी ओमानन्द जी) से मिले और गुरुकुल की आजीवन सदस्यता ली। गुरुकुल झज्जर, कालवा, शादीपुर जुलाना इत्यादि में दानवीर की भूमिका बखूबी निभाते रहे।

कृषि कार्य

स्वाध्याय और प्रचार के साथ महाशय जी पैतृक भूमि पर खेतीबाड़ी भी करते। उनकी गिनती गांव के सम्पन्न किसानों में होती थी। उनका नियम था कि हल बाद में जोड़ते, पहले खेत में ही संध्या-हवन, योग, उपासना करते, फिर कृषि उपकरणों का इस्तेमाल करते। अपने दम पर 33 एकड़ भूमि की खेती करते थे। इस पुरुषार्थ और क्षमता का श्रेय वे महर्षि दयानंद सरस्वती जी को देते थे।

शास्त्रार्थ

आपने लगभग ११०० पुस्तकों का स्वाध्याय और संग्रह किया। एक बार पौराणिकों से इनका शास्त्रार्थ गणेश उत्पत्ति पर हुया। गांव में अकेले आर्यसमाजी थे, और पौराणिकों की जमात खड़ी हो गई। शास्त्रार्थ में सभी के घुटने टिकवा दिये। ऐसे ही एक और पौराणिक से इनका शास्त्रार्थ 33 कोटि देवताओं पर हुआ। वहां से भी पोपजी भाग गये।

आर्यसमाज के आन्दोलन

हिंदी रक्षा, गौरक्षा आंदोलन में सत्याग्रही इकट्ठे करना, आंदोलन का प्रचार, चंदा एकत्रित करना इत्यादि का कार्य आचार्य भगवानदेव जी ने महाशयजी को सौंपा। इन्होंने सहर्ष स्वीकार कर महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सत्याग्रहियों की हर संभव मदद की। स्व० स्वामी इन्द्रवेश जी द्वारा संचालित सभी आन्दोलनों में आप स्वामीजी के विश्वसनीय और अग्रणी भूमिका में रहे। हिंदी रक्षा आंदोलन में इनकी भेंट स्व० पं० चन्द्रभानु आर्योपदेशक से हुई। इसके बाद दोनों में घनिष्ठता हो गई जो जीवनपर्यन्त बनी रही। पं० चन्द्रभानु आर्योपदेशक ट्रस्ट द्वारा जींद में आयोजित समारोह में महाशय स्वरूपलाल जी को महामहिम राज्यपाल आचार्य देवव्रत जी के कर कमलों से प्रथम 'पं० चन्द्रभानु आर्य भजनोपदेशक सम्मान' से सम्मानित किया गया।

रचना-कर्म

महाशयजी गायक प्रचारक के साथ एक सिद्धहस्त कवि के रूप में भी जाने गए। पं० चन्द्रभानु जी ने शांतिधर्मी प्रकाशन के माध्यम से इनकी भजनों की पुस्तक 'चेतावनी' प्रकाशित की। सन् 1965 में पाकिस्तान की लड़ाई में महाशय जी ने फौजियों के उत्साहवर्धन के लिए अनेक गीत लिखे और खूब जमकर प्रचार किया। भजनों की झलक देखिये-

१ हे भगवान मेरे भारत को महान करदे न।
शत्रु के तोड़े दांत इसे बलवान करदे न।।

२- सुनले भारत की औलाद, तन्ने रहना जो आजाद
बाजी लाकै जान की, आहुती देनी होगी आपने प्राण की।।

३ भारत मां की रक्षा खातर चालै वीर जवान।
चलते वक्त सुने थे जब बहन के बयान।।

महाशयजी के चार शिष्य हैं- सत्यपाल आर्य, डोहाना खेड़ा, ब्रह्मसिंह मास्टर ब्राह्मण माजरा, सीताराम कसाण (दिवंगत), धुला सिंह छात्तर थुआ। सत्यपाल डोहाना खेड़ा अब भी इनके गीतों का प्रचार करते हैं। महाशय जी ९० वर्ष की आयु में भी आर्यसमाज के उत्सवों में दुःख सुख पाकर पहुंच जाते थे। आर्यसमाज को महाशय स्वरूपलाल जी जैसे कर्मठ, दानवीर, साहसी कवि पर गर्व है। ऐसे प्रणम्य व्यक्तित्त्व इस धरती पर कभी कभी ही पैदा होते हैं।

शांतिधर्मी परिसर में मनाया होलिकोत्सव

जींद, नरवाना मार्ग स्थित शांतिधर्मी परिसर में वैदिक सांस्कृतिक पर्व होली सहदेव शास्त्री के संयोजन में पारम्परिक उल्लास के साथ मनाया गया। इस अवसर पर आयोजित हवन में १४ किलोग्राम शुद्ध घी एवं औषधीय सामग्री सहित नवान्न की आहुतियाँ दी गयीं। यज्ञ के ब्रह्मा पण्डित रामेश्वर दत्त ने बताया कि होली एक सांस्कृतिक पर्व है। इसका प्राचीन नाम नवसस्येष्टि पर्व है। हमारी संस्कृति उपकार करने और बांट कर खाने की संस्कृति है। प्राचीन काल में नयी फसल आने पर बड़े बड़े सामूहिक हवन किये जाते थे जिससे पर्यावरण भी शुद्ध होता था और मिल बैठने की संस्कृति का विकास होता था। सुमेधा, प्रतिष्ठा व आस्था ने मंत्रमुग्ध कर देने वाले भक्ति गीत प्रस्तुत किये। हवन में प्रिं० राजकुमार वर्मा, डॉ० शिवप्रकाश सैनी, रवीन्द्र कुमार सोनी, पवनदीप तँवर, प्रा० अमनदीप, डॉ० अश्वनी कुमार, कर्णदीप ढांडा, जयदेव मित्तल, सुरेन्द्र शर्मा व सत्यव्रत आर्य ने सपत्नीक यजमान का आसन ग्रहण किया। सर्वश्री जिलेसिंह आर्य, सुन्दरसिंह खर्ब, सत्यवान, विनीता आर्य, मा० धर्मवीर धीमान, सुमन मान आर्य, वीना आर्य, रेखा सैनी, डॉ० पिंकी सैनी, मा० जगदीश सिंधु, विमला पूनिया, सुजाता बिढाण, मंजू खटकड़, राजकुमार छापडा, राजकुमार कुचराना, मा० केवल जुलानी, पृथ्वीसिंह मोर , विजयपाल आर्य आदि सहित सैंकडों गणमान्य लोगों ने यज्ञ में आहुति प्रदान की। महेन्द्रपाल आर्य, प्रतिभा व श्रीमती सुमन मान ने यज्ञ के व्यवस्था आयोजन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस अवसर पर तपस्वी विद्वान पण्डित रामेश्वर को 'चन्द्रभानु आर्य धर्मार्थ ट्रस्ट' द्वारा सम्मानित किया गया। अन्त में सभी ने होलिकोत्सव का प्रसाद ग्रहण किया। इस यज्ञ की विशेषता यह थी कि यज्ञ में आहुत करने के लिये घृत शाकल्य, अन्नादि सभी लोग विशेषकर माताएँ बहनें अपेन अपने घरों से लेकर आईं थी। एक किलाग्राम से लेकर एक चम्मच तक का संगतिकरण मनमोहक था। श्रीमती चन्द्रबाला आर्या धर्मपत्नी डॉ० सुभाष चन्द्र आर्य ने हलवे के प्रसाद के लिये ४ किलोग्राम घी प्रदान किया। (का प्र०)

हमारे कुछ महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

आर्यों की
गोत्र परम्परा का वैज्ञानिक
विश्लेषण
लेखक : महीपाल आर्य
पृष्ठ : ४८
मूल्य २० /- लागत मात्र

भारत एक खोज
हमने क्या खोजा?
भारत या इण्डिया
लेखक : राजेशार्य आट्टा
पृष्ठ : ९०
मूल्य ४० /- लागत मात्र

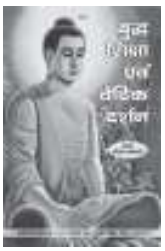

बुद्ध शिक्षा एवं वैदिक धर्म
लेखक : हरिवंश वानप्रस्थी
पृष्ठ : ८८
मूल्य लागत मात्र २०/-

देव गीत
(स्तुति, प्रार्थना और प्रेरणा गीतों का अनुपम संग्रह)
लेखक : सहदेव समर्पित
पृष्ठ : ५० मूल्य २०/- लागत मात्र

चारों पुस्तकों का मूल्य एक सौ रुपये अग्रिम भेजकर पंजीकृत डाक से मंगावें।
रजिस्टरी शुल्क हम वहन करेंगे।
पुस्तक मंगाने व अग्रिम राशि जमा कराने के लिये खाता नं० हेतु सम्पर्क करें- व्हाट्स एप- 9996338552
या पत्र व्यवहार करें- : शांतिधर्मी कार्यालय, पोस्ट बॉक्स नं० 19, मुख्य डाकघर जींद-126102

खरबूजे की उपमा (पृष्ठ २२ का शेष)

फल के मूल में भी इसी प्रकार का एक तन्तु लगा रहता है जिसे आप खरबूजे की मूंछ कह सकते हैं। इसका काम न पंजा जमाना है, न खुराक लेना है। इसका काम फल पकने की सूचना देना है। जैसे ही फल के मूल में लगा हुआ यह तन्तु सूखा कि माली समझ गया कि फल पक गया। तरबूज फल, जिसकी डाल अन्तिम समय तक फल को नहीं छोड़ती, पकने की सूचना मूल में लगा हुआ यह तन्तु सूखकर ही देता है। इस प्रकार खरबूजे फल के पकने की यही नवीं पहचान है।

प्रिय मित्र! मृत्यु की यह बेल, जिसमें हम सब खरबूजे फल की भाँति जुड़े हुए हैं, निकट की हर वस्तु पर छा जाने के लिए है और बराबर अपना पंजा जमाने के लिए है। तू भी अपने प्रकृति-पंजे को जमाना, भोजन लेना, पानी लेना, परिपक्व होना; और जब तेरे जीवन-फल के तृष्णा-तन्तु सूखने लगें, मूंछें पकने लगें तो समझ लेना कि अब छूटने का समय निकट है। गृहस्थाश्रम से मुक्त होकर वानप्रस्थ बनने की एक पहचान यह बाल पकना भी तो है। मनु महाराज लिखते हैं-

गृहस्थस्तु यथा पश्येद् वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्।। -मनु० 6/2

अर्थात् (गृहस्थः तु) गृहस्थ (यदा) जब (आत्मनः) अपने (वली पलितम्) शरीर को कमजोर (पश्येत्) देखे। (अपत्यस्य च अपत्यम्) और पुत्र के पुत्र को देखे (तथा) तब (अरण्यं समाश्रयेत्) वानप्रस्थी हो जावे।

हे साधक! बालों के साथ-साथ तेरी वासनाएं भी पक जानी चाहिएँ। जैसे बाल पककर स्वतः झड़ जाते हैं, वैसे ही जब तेरी वासनाएं पककर झड़ जायेंगी, तो तू मोक्ष का अधिकारी बन जायेगा। हे मुमुक्षो! तुझे मुक्त होने के लिए पकना होगा, और पकने के लिए उक्त पहचानों का अनुष्ठान करना होगा। उसके बाद तू मृत्यु-बन्धन से छूटकर अमृतत्व का उपभोग करेगा और 'मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्' की प्रार्थना सफल होगी। सावधानी बरतना, जीवन- फल के पूर्ण परिपक्व होने तक फूंक-फूंककर कदम रखना! कहीं कोई ऐसा कार्य न कर बैठना कि लोगों की अंगुली तेरी ओर उठने लगे! देखना अंगुली उठी कि तेरा जीवन-फल मुरझाया। व्यक्ति तेरी ओर अंगुली न उठाकर तेरे से हाथ मिलाने, पञ्जा बढ़ाने अथवा दोनों हाथ मिलाकर नमस्ते करने में प्रसन्नता अनुभव करें। बस अंगुली न उठवाना। साधक! सावधान रहना।

सहायक ग्रन्थ-: 'मृत्युञ्जय सर्वस्व'- दीक्षानन्द सरस्वती

आरोग्यप्रद आहार (पृष्ठ २५ का शेष)

न पीकर हर घंटे- आधे घंटे बाद पानी पिया जा सकता है।
(१०) शीतल पेय, फास्ट फूड, ब्रेड, बिस्किट, पूड़ी, केक, कचौड़ी, रंग बिरंगी मिठाईयाँ तथा टॉफी, आइसक्रीम, चाय आदि स्वास्थ्य के लिए अहितकर हैं। मैदा खाद्य आंतों से चिपक कर कब्ज पैदा करतें है तथा डिब्बाबंद खाद्य पदार्थों में उनके संरक्षण के लिए कीटनाशक मिलाये जाते हैं जो आंतरोग, गठिया, यकृत, फेफड़े आदि के रोग पैदा करते हैं।
(११) स्वस्थ रहने के लिए हमारे खून का माध्यम ८० प्रतिशत क्षारीय एवं २० प्रतिशत अम्लीय होना चाहिये। अतः क्षारीय खाद्य पदार्थ अधिक सेवन करना चाहिए। क्षारीय खाद्य पदार्थ व अम्लीय खाद्य की संक्षिप्त सूची दी जा रही है जिससे हम स्वयं खाद्य चुन सकते हैं।

अम्लीय खाद्य (हानिकारक) :- चीनी, कृत्रिम नमक, मैदा, पॉलिश हुआ चावल, पॉलिश वाली दाल, बेसन, अचार, ब्रेड, बिस्किट, केक, डिब्बा बंद खाद्य पदार्थ, मांस, मिठाईयाँ, तेल, घी आदि।

क्षारीय खाद्य (स्वास्थ्यप्रद) :- गुड़, शहद, ताजा दूध, दही, ताजे सभी फल (जो पककर मीठे होते हैं) सभी हरी सब्जियां, उबला आलू, चोकरयुक्त आटा, छिलका सहित दाल, अंकुरित अन्न, मक्खन, कच्चा नारियल, किशमिश, मुनक्का, छुआरा, अंजीर।

ये खाद्य पचकर खून को अम्लीय या क्षारीय बनाने वाले हैं। नींबू अम्लीय है परन्तु पचकर क्षारीय हो जाता है। अतः नींबू, संतरा, मोसम्मी, अन्ननास आदि क्षारीय की श्रेणी में रखे गए हैं। नींबू को भोजन के साथ नहीं, प्रातः पानी के साथ पीना लाभदायक है। भोजन में कार्बोहाईड्रेट होता है। नींबू डालने से खटास के कारण अन्न के पाचन में कठिनाई आती है क्योंकि कार्बोहाईड्रेट (गेहूं, चावल, आलू) आदि का पाचन-क्षारीय माध्यम में होता है। भोजन के दो घंटे बाद या दो घंटे पहले नींबू को पानी के साथ पी सकते हैं। नींबू कई रोगों से बचाता है। विटामिन 'सी' की पूर्ति करता है। रक्त को साफ रखता है, जीवनी शक्ति और रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है।
(१२) भोजन के साथ ताजी चटनी, टमाटर, पालक, पोदीना, आंवला, नारियल आदि ले सकते हैं, परन्तु अचारों से परहेज रखना ही हितकारक है।

इन मामूली सी बातों का ध्यान रखकर इस दुर्लभ मानव शरीर को, जिसे ईश्वर ने साधन के रूप में दिया है, स्वस्थ रखने का दायित्व हम सबका है। 'शरीरमाद्यम् खलु धर्मसाधनम्' शरीर को स्वस्थ रखना प्रथम कर्तव्य है।

सनातन (पृष्ठ १५ का शेष)

अपितु मनुष्य के ज्ञान में कमी होने के कारण या अविद्या उत्पन्न होने के कारण है। वेद के मंत्र तो आज भी वही हैं जो आदि सृष्टि में थे, परंतु अविद्या होने के कारण मनुष्य के व्यवहार बदल गए- यह दोष ईश्वरीय ज्ञान का नहीं, मनुष्यों के अज्ञान का है। संसार की वस्तुएं, लोगों के विचार परिवर्तित हो सकते हैं परंतु संसार के नियम नहीं बदलते। सूर्य कल भी पूर्व से उगता था। आज भी पूर्व से उगता है और कल भी पूर्व से ही उगेगा। यह है सनातन। कृपया मानव और ईश्वर की व्यवस्थाओं के अंतर को समझिये। वेद में सत्य के आचरण का विधान है जो सब देशों में, सब कालों में एक समान सभी के लिए अनुकरणीय है।

आज जिन प्रथाओं, मान्यताओं और कर्मकांडों को सनातन कहकर लोगों को परोसा जा रहा है, वह तो मानव का भयंकर रूप से शोषण है। मानवता के प्रति घोर अपराध ा है। कैसे-कैसे कृत्य आज समाज में हो रहे हैं, जिनके मूल में अज्ञान की पराकाष्ठा ही छुपी हुई है। उन सबको सनातन बताकर लोगों को अज्ञान के अंधकार में धकेल देना-- सोचिए कि कितना बड़ा अपराध है! जहां पर मानव मन पर सोच-विचार करने पर ही प्रतिबंध लगा दिया जाए, तर्क वितर्क को कोई स्थान ही ना रहे, लोगों को पंगु बनाकर, अंधा बना कर पहाड़ों पर चलने जैसा ही कार्य है।

ऐसा कहने वाले लोग भी आपको मिल जाएंगे कि -क्या अंतर पड़ता है? सब धर्म उसी ईश्वर की ओर जाने का ही तो मार्ग बतलाते हैं। हमारी दृष्टि में तो सभी एक ही हैं। आश्चर्य है कि यदि ऐसा ही है तो फिर यह झगड़े और यह ईर्ष्या द्वेष क्यों? धर्म के नाम पर हिंसा क्यों? इससे सिद्ध होता है कि कहीं न कहीं कोई ना कोई दोष तो अवश्य ही है। केवल बाहर से प्रथम दृष्टया सब कुछ ठीक प्रतीत होता है, परंतु जैसे ही भीतर घुसते हैं तो बहुत बड़ी गड़बड़ दिखाई देती है।

एक व्यक्ति प्यासा था। उसने पानी मांगा। जिससे पानी मांगा था, उसने कहा कि- अंदर जाओ। कमरे में मेज पर बहुत सारी बोतलें रखी हैं, उनमें से ले लो और प्यास बुझाओ। वह व्यक्ति अंदर गया। मेज की ओर देखा। वास्तव में बोतलें तो कई थीं। सभी में एक जैसा पदार्थ था, जो पानी जैसा दिखाई देता था। उसने एक बोतल उठाई, खोली और पीने के लिए जैसे ही मुंह के पास लेकर आया कि तुरंत एक विचित्र गंध ने उसे चौंका दिया। उसमें तो तेजाब भरा था। उसका माथा ठनका। अरे! यह तो मैं मरते-मरते बचा। यदि उठाते ही मुंह से लगाकर पी जाता तो मृत्यु निश्चित थी। पानी ढूंढना ही मुश्किल हो गया। आज सभी का ईश्वर की ओर जाने वाले मार्ग का बताना भी ऐसा ही है। परीक्षा आवश्यक है। इसके बिना तो ठगे जाओगे। यह तो चलता ही आया है, सनातन है, यह कहने से काम चलने वाला नहीं है। कभी सती प्रथा को भी सनातन माना गया था। अस्पृश्यता को भी सनातन माना गया था। बाल विवाह को भी सनातन माना गया था। नरबलि, पशु-बलि को भी सनातन माना जाता था। (आज भी माना जाता है) इन प्रथाओं ने मानव जाति का कितना अहित किया है, यह विचार योग्य है।

शब्दों के महत्त्व को जानिये। उनके व्यापक अर्थ पर विचार कीजिये। उस अर्थ पर आधारित व्यवहार को जानिये और फिर निर्णय कीजिये। रहस्य आपके सामने खुलने लगेंगे। चिंतन को अपनी जीवन शैली बनाइये। मनन कीजिए, भगवान ने इसीलिए हमें मनुष्य बनाया है कि हम विचार कर कार्य करें। जितना अधिक विचार करेंगे निरीक्षण परीक्षण करेंगे, उतना ही अधिक लाभ होगा।

फार्म - IV (देखिए नियम-8)

प्रकाशन का नाम : शांतिधर्मी
प्रकाशन का स्थान : जीन्द (हरियाणा)
प्रकाशन की अवधि : मासिक
मुद्रक का नाम : सहदेव
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : 756/3, आदर्श नगर, सुभाष चौक (पटियाला चौक) जीन्द
प्रकाशक का नाम : सहदेव
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : 756/3, आदर्श नगर, सुभाष चौक (पटियाला चौक) जीन्द
सम्पादक का नाम : सहदेव
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : 756/3, आदर्श नगर,सुभाष चौक (पटियाला चौक) जीन्द

उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र की कुल पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के हिस्सेदार हैं।

सहदेव
756/3, आदर्श नगर,
सुभाष चौक (पटियाला चौक) जीन्द

मैं सहदेव एतद् द्वारा घोषणा करता हूं कि उपर्युक्त प्रविष्ठियां मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास से सत्य हैं।

सहदेव
प्रकाशक के हस्ताक्षर

बिन्दु बिन्दु विचार संकलन

❑**भलेराम आर्य,** सांघी वाले 9416972879

❖बार बार यत्न करने से असम्भव भी संभव हो जाता है, शत्रु मित्र हो जाता है और विष अमृत बन जाता है।

❖धर्म दक्षता में, यश दान में, स्वर्ग सत्य में और सुख शील में रहता है। –वेद व्यास

❖अभ्यास से विद्या धारण की जाती है, कुल को शील से धारण किया जाता है, गुणों से मित्र धारण किए जाते हैं और नेत्रों से क्रोध धारण किया जाता है।

❖चाहे कौए का शरीर सोने का हो जाए, चोंच पर चाहे रत्न लगा दिया जाएँ, एक एक पंख में मणियों को गूंथ दिया जाए-- तो भी कौआ राजहंस का स्थान नहीं ले सकता।

❖यह सत्य है कि सत्य का जानना बड़ा ही कठिन होता है, किन्तु यह तभी तक है जब तक हमें सत्य से प्रेम नहीं होता। जिसे सत्य की लगन है, जिसके पास यही एकमात्र वस्तु है, उसके पास तो सत्य प्रेमीजन की तरह भागा चला आता है।

❖संसार में सबसे बड़ा अधिकार सेवा और त्याग से प्राप्त होता है। –मुंशी प्रेमचंद।

❖सबसे बुरा नशा ऐश्वर्य पाकर होता है जो तब तक नहीं उतरता जब तक मनुष्य पूरी तरह भ्रष्ट नहीं हो जाता। –महात्मा विदुर

❖सीधा मार्ग वही होता है जिसमें सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, पक्षपात रहित न्याय, धर्म का आचरण आदि हैं, और इसके विपरीत का त्याग।

❖एक आर्य का जीवन और उसका कार्य जहाँ स्वयं उसके लिए आत्मसंतुष्टि का प्रतीक होना चाहिए, वहीं दूसरों के लिए प्रेरक और अनुकरणीय भी होना चाहिए।

पाठकों से निवेदन

१ एक स्थान पर १० या अधिक सदस्य होने पर किसी एक सदस्य के पास पैकेट रजिस्टर्ड डाक से भेजते हैं। इसका रजिस्टरी खर्च हम वहन करते हैं। रजिस्टरी और पैकिंग सहित यह लगभग ३००/–(एक वर्ष) होता है। एक सदस्य का रजिस्टरी खर्च वहन करना हमारे लिये संभव नहीं है। यदि आपको अपनी प्रति साधारण डाक से नहीं मिल रही है और आप अपनी एक प्रति रजिस्टरी से मंगाना चाहते हैं तो अपने सदस्यता शुल्क में एक वर्ष के लिए अतिरिक्त ३००/– जोड़कर भेजें। हम चाहेंगे कि आप दस वर्षीय सदस्यता शुल्क भेजने की बजाय अपने आसपास के कम से कम दस सदस्यों का वार्षिक शुल्क भेजें। आपको एक वर्ष तक हर मास १० प्रतियाँ रजिस्टर्ड डाक से प्राप्त होंगीं। यह सहयोग कुछ पाठक कर भी रहे हैं।

२ आप अपनी प्रति ई मेल से भी पीडीएफ में मंगा सकते हैं। उसके लिए कोई अतिरिक्त शुल्क देय नहीं है।

कोरोना की विभीषिका के संदर्भ में हम पाठकों से निवेदन करते हैं कि वे संगठित और एकजुट होकर सरकार और प्रशासन के निर्देशों का सख्ती से पालन करें। घर में प्रतिदिन यज्ञ करें। बच्चों को संध्या सिखाएँ। किसी आर्ष ग्रंथ का और नैतिक शिक्षा की पुस्तकों का स्वाध्याय बच्चों के साथ अवश्य करें।

कोरोना के लॉकडाऊन के मध्य हम पाठकों को इण्टरनेट के द्वारा ही शांतिधर्मी भेज पायेंगे। आप अपने ईमेल या व्हाट्स एप्प पर मंगा सकते हैं।

साथ ही इस अवधि का शुल्क भी पाठकों से नहीं लिया जायेगा।

ईश्वर आपकी रक्षा करे। आप स्वयं अपनी रक्षा करने के लिये निर्दिष्ट उपाय अवश्य करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक सहदेव द्वारा प्रियंका प्रिंटर्स, जींद के लिए आचार्य प्रिंटिंग प्रेस रोहतक से छपवाकर, कार्यालय शान्तिधर्मी ७५६/३, आदर्श नगर, सुभाष चौक (पटियाला चौक), जीन्द-१२६१०२ (हरि०) से प्रकाशित। सम्पादक : सहदेव

॥ ओ३म् ॥

Your child's bright future with Bharteey Culture ....

स्वामी दयानंद सरस्वती
(आर्य समाज के संस्थापक)

SHIVALIK गुरुकुल

A Modern C.B.S.E. Pattern Residential School Only for Boys

आचार्य नन्दकिशोर
(निदेशक)

"शिक्षा, स्वास्थ्य, संस्कार, सेवा"

मूलभूत सुविधाएँ

❖ शहर के शोरगुल से दूर 16 एकड़ के विशाल परिसर में स्थित प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त वातावरण ❖ आधुनिक सुविधाओं से युक्त विशाल एवं हवादार कक्षा-कक्ष ❖ अंग्रेजी, हिन्दी व संस्कृत प्रशिक्षण के लिए भाषा प्रयोगशाला ❖ सभी विषयों की पुस्तकों से सुसज्जित पुस्तकालय ❖ CCTV कैमरे से युक्त छात्रावास एवं विद्यालय ❖ आधुनिक उपकरणों से युक्त शूटिंग रेंज ❖ घुड़सवारी ❖ नियमित अध्यापक-अभिभावक मीटिंग ❖ अत्याधुनिक Computer प्रयोगशाला ❖ SMS द्वारा सूचना प्रेषण ❖ सुसज्जित रसायन, भौतिक, जीव विज्ञान, गणित, सामाजिक और विज्ञान प्रयोगशालाएं ❖ समर्पित एवं अनुभवी स्टाफ ❖ संगीत कक्ष ❖ गुरुकुल App के माध्यम से छात्रों की दैनिक शैक्षिक एवं उपस्थिति जानकारी ❖ सभी सुविधाओं से युक्त वातानुकूलित छात्रावास ❖ विभिन्न खेल प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षकों की व्यवस्था ❖ प्रतिदिन सन्ध्या-यज्ञ के लिए यज्ञशाला ❖ विस्तृत व हरे-भरे खेल के मैदान।

FEE STRUCTURE

Class	Amount
4th to 6th	1,25,000/-
7th to 8th	1,30,000/-
9th to 10th	1,35,000/-
11th*	1,45,000/-

प्रवेश प्रारम्भ

कक्षा चौथी से ग्याहरवीं
Class IV to XI
(Medical, Non Medical, Commerce)
2020-21

VILL. ALIYASPUR, P.O. SARAWAN, MULLANA, AMBALA-133 206 (HARYANA)
shivalikgurukul.ambala@gmail.com • www.shivalikgurukul.com
Admission Helpline : 9671228002, 9671228003, 8813061212, 8295896525, 9053720871

Facebook@ShivalikGurukul Please Like, Share and Subscribe our School Youtube Channel Shivalik Gurukul for Videos and More Updates

अलसस्य कुतो विद्या अविद्यस्य कुतो धनम् । अधनस्य कुतो मित्रम् अमित्रस्य कुतः सुखम् ।

R.N.I. No. 70866/99 शान्तिधर्मी हिन्दी मासिक (मार्च, २०२०) P.R. No. : PKL 150-A/2020-22

शांतिधर्मी एक अद्वितीय पत्र है

इसमें परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिये स्वस्थ और सुरूचिपूर्ण सामग्री होती है।

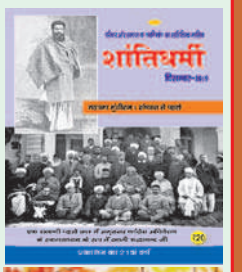

☆ **शांतिधर्मी** में धर्म-दर्शन के रहस्य, राष्ट्र व समाज की ज्वलंत समस्याओं पर अधिकारी विद्वानों के श्रेष्ठ विचार होते हैं।

☆ **शांतिधर्मी** भारतवर्ष के गौरवपूर्ण इतिहास की झलक दिखाता है।

☆ **शांतिधर्मी** वह मार्ग दिखाता है, जिसे पाने के लिये लोग भटक रहे हैं। परिवार में समाज में सह-अस्तित्व व अन्तरात्मा में सुख शांति का सन्देशवाहक है।

☆ **शांतिधर्मी** उस अध्यात्म का प्रचार करता है-जिसे अपनाने में देश-काल, जाति, मजहब, सम्प्रदाय की सीमाएँ आड़े नहीं आतीं। यह सच्चे ईश्वरीय ज्ञान का प्रचारक है।

☆ **शांतिधर्मी** स्वाध्याय भी है और स्वस्थ मनोरंजन का साधन भी।

☆ **शांतिधर्मी** प्रत्येक श्रेष्ठ-धार्मिक-राष्ट्रप्रेमी-मानवतावादी-व्यक्ति के लिये एक विचार-सूत्र है। प्रत्येक श्रेष्ठ परिवार का आभूषण है।

शांतिधर्मी पढ़िये-

अपने प्रति, समाज के प्रति, राष्ट्र के प्रति, ईश्वर के प्रति सर्वांगीण दायित्वों को जानिये।

जीवन के जटिल व गूढ़ रहस्यों को सहज ही सुलझाईये।

मूल्य : एक प्रति : 20.00 वार्षिक : 200.00 10 वर्ष : 1500.00

शान्तिधर्मी कार्यालय
756/3, आदर्श नगर, सुभाष चौक (पटियाला चौक)
जीन्द-126102 (हरियाणा)
फोन 9416253826, 9996338552
E-mail : shantidharmijind@gmail.com